ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮುಕ್ತಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು-೫೭೦ ೦೦೬

KARNATAKA STATE OPEN UNIVERSITY
Mukthagangotri, Mysore - 570 006.

प्राचीन हिन्दी काव्य

M.A. FINAL HINDI

COURSE / PAPER – I

BLOCK – 1

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University System has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as instrument of democrating education.

National Educational Policy 1986

ವಿಶ್ವ ಮಾನವ ಸಂದೇಶ

ಪ್ರತಿಯೊಂದು ಮಗುವು ಹುಟ್ಟುತ್ತಲೇ – ವಿಶ್ವಮಾನವ, ಬೆಳೆಯುತ್ತಾ ನಾವು ಅದನ್ನು 'ಅಲ್ಪ ಮಾನವ'ನನ್ನಾಗಿ ಮಾಡುತ್ತೇವೆ. ಮತ್ತೆ ಅದನ್ನು 'ವಿಶ್ವಮಾನವ'ನನ್ನಾಗಿ ಮಾಡುವುದೇ ವಿದ್ಯೆಯ ಕರ್ತವ್ಯವಾಗಬೇಕು.

ಮನುಜ ಮತ, ವಿಶ್ವ ಪಥ, ಸರ್ವೋದಯ, ಸಮನ್ವಯ, ಪೂರ್ಣದೃಷ್ಟಿ ಈ ಪಂಚಮಂತ್ರ ಇನ್ನು ಮುಂದಿನ ದೃಷ್ಟಿಯಾಗಬೇಕಾಗಿದೆ. ಅಂದರೆ, ನಮಗೆ ಇನ್ನು ಬೇಕಾದುದು ಆ ಮತ ಈ ಮತ ಅಲ್ಲ; ಮನುಜ ಮತ. ಆ ಪಥ ಈ ಪಥ ಅಲ್ಲ ; ವಿಶ್ವ ಪಥ. ಆ ಒಬ್ಬರ ಉದಯ ಮಾತ್ರವಲ್ಲ; ಸರ್ವರ ಸರ್ವಸ್ತರದ ಉದಯ. ಪರಸ್ಪರ ವಿಮುಖವಾಗಿ ಸಿಡಿದು ಹೋಗುವುದಲ್ಲ; ಸಮನ್ವಯಗೊಳ್ಳುವುದು. ಸಂಕುಚಿತ ಮತದ ಆಂಶಿಕ ದೃಷ್ಟಿ ಅಲ್ಲ; ಭೌತಿಕ ಪಾರಮಾರ್ಥಿಕ ಎಂಬ ಭಿನ್ನದೃಷ್ಟಿ ಅಲ್ಲ; ಎಲ್ಲವನ್ನು ಭಗವದ್ ದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ಕಾಣುವ ಪೂರ್ಣದೃಷ್ಟಿ.

ಕುವೆಂಪು

Gospel of Universal Man

Every Child, at birth, is the universal man. But, as it grows, we trun it into "a petty man". It should be the function of education to turn it again into the enlightened "universal man".

The Religion of Humanity, the Universal Path, the Welfare of All, Reconciliation, the Integral Vision - these ***five mantras*** should become View of the Future. In other words, what we want henceforth is not this religion or that religion, but the Religion of Humanity; not this path or that path, but the Universal Path; not the well-being of this individual or that individual, but the Welfare of All; not turning away and breaking off from one another, but reconciling and uniting in concord and harmony; and above all, not the partial view of a narrow creed, not the dual outlook of the material and the spiritual, but the Integral Vision of seeing all things with the eye of the Divine.

Kuvempu

द्वितीय एम.ए.

हार्दिक बधाइयाँ एवं स्वागत

प्रिय विद्यार्थी

आशा है कि आप सब ने एम.ए. प्रथम वर्ष के 'सिम्' पाठों से लाभांन्वित होकर अच्छे अंक प्राप्त किए होंगे । इसलिए विभाग की ओर से एवं विश्वविद्यालय की ओर से हार्दिक बधाइयाँ देते हैं ।

इस वर्ष भी गत वर्ष की तरह पाँच कोर्स अध्ययन करने की आवश्यकता है । इस उपलक्ष्य में अनुभवि प्राध्यापकों द्वारा 'सिम्' पाठ तैयार करके आपको भेज रहे हैं ।

इस वर्ष के कोर्स निम्नांकित है -

1. **कोर्स एक - प्राचीन हिन्दी काव्य**

इस कोर्स में कुल आठ ब्लाक होंगे । जिनमें पृथ्वीराज रासो, विद्यापति, कबीर, जायसी आदि के संबंध में अध्ययन करेंगे ।

2. **कोर्स दो - मध्यकालीन हिन्दी काव्य**

इस कोर्स में भी कुल आठ ब्लाक होंगे । जिनमें गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, बिहारी, घनांनद आदि के बारे में अध्ययन करेंगे ।

....2

3. कोर्स तीन - हिन्दी भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा का इतिहास

इस कोर्स में भी कुल आठ ब्लाक होंगे । भाषा विज्ञान के चार ब्लाक तथा भाषा का इतिहास के चार ब्लाक हैं ।

4. कोर्स चार - भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र

इस कोर्स में भी कुल आठ ब्लाक होंगे । भारतीय काव्य शास्त्र के चार ब्लाक तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र के चार ब्लाक है ।

5. कोर्स पाँच - 'ऐच्छिक'

भाग - अ - विशेष साहित्यकार - 'प्रेमचंद'
भाग - आ - हिन्दी पत्रकारिता ।

भाग 'अ' और 'आ' इनमें से किसी एक भाग को आप चुन सकते हैं । प्रत्येक भाग के आठ-आठ ब्लाक है । जिस भाग को विद्यार्थी चुनेंगे उन्हें उसी विषय पर **'सिम्' पाठ** भेज दिए जाएँगे ।

आप कौन-सा भाग चुनेंगे इसकी सूचना लिखित रूप से हमें देना जरूरी है ताकि हम आपको तत्संबंधित पाठ भेजने में सुविधा होगी ।

....3

इस साल भी गत वर्ष जैसे ही प्रत्येक कोर्स के लिए 10 अंक का अभिहस्तांकन (Assignment) है । विभाग की ओर से **'अभिहस्तांकन' (Assignment)** के प्रश्न भेजेंगे । उसके लिए उत्तर गत वर्ष जैसे हमें भेजना है ।

अगर पाठ्यक्रम में कुछ शंका हो तो नीचे दिए गए पते पर पत्र मुखेन पूछ-ताछ कर सकते हैं ।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ. कांबले अशोक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर – ६.

द्वितीय एम.ए. - कोर्स एक

Course - I, Paper - I

1

प्राचीन हिन्दी काव्य

'पृथ्वीराज रासो'

Unit No. 1 to 4		Page No.
अनुक्रमणिका		

इकाई	01	चन्दबरदाई का जीवन-वृत्त	1 - 22
इकाई	02	रासो काव्य परम्परा	23 - 52
इकाई	03	पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता तथा प्रामाणिकता	53 - 78
इकाई	04	पद्मावती समय का कथासार एवं काव्य-सौंदर्य	79 - 96

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो. एम.जी. कृष्णन्
उप–कुलपति तथा अध्यक्ष
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय
मैसूर–६

प्रो. एस.एन. विक्रम राज अरर्स
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6

बी.जी.चन्द्रलेखा
पुर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
क. रा. मु. वि. विद्यानिलय,
मानस गंगोत्री
मैसूर – ६.

संयोजिका

पाठ्यक्रम की लेखिका तथा संपादिका

डॉ.एम.विमला
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बेंगलूर विश्वविद्यालय
बेंगलूर - 54.

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर, शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित । सभी अधिकार सुरक्षित । कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से रजिस्ट्रार
द्वारा मुद्रित व प्रकाशित।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थी,

कोर्स - एक में आप प्राचीन हिन्दी काव्य के बारे में अध्ययन करने वाले है तथा सविस्तार रूप से जानकारी भी प्राप्त करेंगे ।

अब आप **ब्लाक - एक** में हिन्दी साहित्य का पहला महाकवि चन्दबरदाई का जीवन-वृत्त, रासो काव्य परम्परा, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता तथा प्रामाणिकता, पद्मावती समय का कथासार एवं काव्य-सौंदर्य के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ. कांबले अशोक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर – ६.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] कि

[illegible]

[illegible]

इकाई एक : चन्दबरदाई का जीवन-वृत्त

इकाई की रूपरेखा

1.0. उद्देश्य

1.1. प्रस्तावना

1.2. जीवन-वृत्त

1.3. जन्म-स्थान

1.4. जन्म - संवत्

1.5. नाम

1.6. माता-पिता

1.7. जाति

1.8. धार्मिक मत

1.9. विवाह एवं संतान

1.10. वंशज

1.11. चन्दबरदाई और पृथ्वीराज के मैत्रीपूर्ण संबंध

1.12. चन्द की बहुज्ञता

1.12.1. चन्द चौदह भाषाओं का ज्ञाता और त्रैलोक की घटनाओं का जानन हार

1.12.2. चन्दबरदाई का भाषा-ज्ञान

1.12.3. पिंगल-शास्त्र का ज्ञान

VOP - I - 2

1.12.4. साहित्य एवं काव्य-शास्त्र का ज्ञान

1.12.5. धर्म, राजनीति, इतिहास, नवरस, व्याकरण आदि विविध विषयों का ज्ञान

1.12.6. शास्त्रार्थ का ज्ञान

1.12.7. सिद्धियां, तंत्र-मंत्र और ज्योतिष का ज्ञान

1.12.8. युद्ध-कौशल का ज्ञान

1.13. चन्दबरदाई की मृत्यु

1.14. निष्कर्ष

1.15. बोध प्रश्न

1.0. उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हिन्दी साहित्य के कविश्रेष्ठ चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त की चर्चा की जा रही है, जिसके अध्ययन के उपरांत आप -

1. कवि चन्दबरदाई के जन्म-स्थान तथा जन्म-संवत् का परिचय प्राप्त करेंगे ;
2. उनके नाम से संबंधित अनेक विषय, उनके माता-पिता, जाति, मत आदि से परिचित होंगे ;
3. उनके विवाह, संतान, उनके वंशज आदि से अवगत होंगे ;
4. चन्दबरदाई तथा पृथ्वीराज की मित्रता तथा इस संबंध में आलोचकों के कथन की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
5. कवि चन्द की विद्वत्ता को समझ पायेंगे ;
6. उनकी मृत्यु-तिथि, तत्संबंधी विचारों से भी अवगत होंगे ;
7. चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त से परिचित होंगे ।

1.1. प्रस्तावना

कवि चन्दबरदाई हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं । उनके जीवन-वृत्त के संबंध में कहीं भी कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती सिवाय उनकी मेरुकृति 'पृथ्वीराज रासो' के । पृथ्वीराज रासो में कई ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनके द्वारा हमें कवि चन्द के जीवन से संबंधित प्रमुख अंशों का परिचय प्राप्त होता है । उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक की जानकारी इन्हीं पंक्तियों में मिलती है । इस इकाई के अंतर्गत इस महान कवि चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त की चर्चा की जायेगी ।

1.2. जीवन-वृत्त

हिन्दी के प्रथम महाकवि चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त के संबंध में इतिहास मौन है । इनके द्वारा निर्मित 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर ही इनके जीवन के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि चन्दबरदाई के विषय में बहिर्साक्ष्य नहीं के बराबर है । हिन्दी के प्रथम महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर ही इनके जन्म-समय, जन्म-स्थान आदि के विषय में जाना जा सकता है । आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इनके जीवन के विषय में केवल इतना लिखा है कि ''रासो के अनुसार यह जाति के जागत नामक गोत्र के थे । इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था । इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था । वे महाराज पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं, उनके सखा और सामंत भी थे, तथा षट्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्द शास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि अनेक विद्याओं में पारंगत थे । इन्हें जालंधरी देवी का इष्ट था, जिसकी कृपा से ये अदृष्ट-काव्य भी कह सकते थे । इनका जीवन पृथ्वीराज के साथ ऐसा मिला-जुला था कि अलग नहीं किया जा सकता है । युद्ध में, आखेट में, सभा में, यात्रा में सदा महाराज के साथ रहते थे और जहां जो बातें होती थीं, सब में सम्मिलित रहते थे ।''

शुक्लजी का उपर्युक्त कथन यद्यपि अधिकांश में सत्य है, तथापि विद्वानों ने विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर चन्द के जीवन के संबंध में अधिक विस्तार के साथ जानकारी प्राप्त की है । इस विवेचना को ध्यान में रखकर हम चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त का अध्ययन करते हैं ।

1.3. जन्म-स्थान

इनके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे और चन्दबरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था । पृथ्वीराज रासो के निम्नलिखित छन्द में इनके जन्म-स्थान का स्पष्ट उल्लेख है -

हुअ निझ्झर कनबज्ज जैत सलष लव्वूगढ़ ।
मंडोवर परिहार करषि पंगुर हाहुलि ढिढ़ ।।

वलिभद्र सु नागौर चन्द उप्पजि लाहौरह ।
दिल्लय अत्ताताइ वियाधर सामंत सोरह ।।

महामहोपाध्याय पं.हरप्रसाद शास्त्री ने सन् 1909 से सन् 1913 तक प्राचीन ऐतिहासिक काव्यों की खोज में राजपूताने की तीन यात्राएँ की थीं । बंगाल की रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी ने इन यात्राओं का विवरण प्रकाशित किया था । इस वर्णन का उल्लेख करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''इस विवरण में 'पृथ्वीराज रासो' के विषय में बहुत कुछ लिखा है और कहा गया है कि कोई कोई तो चन्द्र के पूर्व पुरुषों को मगध से आया हुआ बताते हैं, यह पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था ।''

कहते हैं कि चन्दबरदाई पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय में राजपूताने में आया था । पहले वह सोमेश्वर का दरबारी बना और बाद में पृथ्वीराज का मंत्री सखा और राजकवि हुआ । अतः यह निर्विवाद सत्य है कि चन्दबरदाई का जन्म स्थान लाहौर है ।

1.4. जन्म - संवत्

आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चन्दबरदाई का समय संवत् 1225 से 1249 तक लिखा है । इस प्रकार चन्दबरदाई की आयु केवल 24 वर्ष ठहरती है । यह तर्क सम्मत प्रतीत नहीं होता है । शुक्ल जी स्वयं लिखते हैं कि चन्दबरदाई सोमेश्वर तथा उसके पुत्र पृथ्वीराज का दरबारी रहा था । 24 वर्ष की अल्पायु में दो पीढ़ियां देख लेना यद्यपि असंभव तो नहीं है, तथापि विशेष युक्तियुक्त भी प्रतीत नहीं होता है ।

'पृथ्वीराज रासो' के अंतर्गत उल्लेखों के अनुसार चन्दबरदाई दानव-क्षत्रिय वंश में उत्पन्न ढुंढा नामक श्रेष्ठ राक्षस की जिह्वा से

उत्पन्न हुए थे । रासो के आधार पर यह कहा जाता है कि ढुंढा राक्षस ने काशी में अपने अंगों को काटकर हवन किया था । इसकी ज्योति से पृथ्वीराज, हड्डियों से शूर सामंत, जिह्वा से कविवर चन्द और रूप से संयुक्ता की उत्पत्ति हुई थी ।

इस वर्णन के आधार पर पृथ्वीराज और चन्दबरदाई की समवयस्कता स्पष्ट हो जाती है । एक छन्द के अनुसार तो दोनों का जन्म संवत् ही क्यों, जन्म दिन भी एक ही ठहरता है ।

दानव कुल क्षत्रीय नाम ढुंढा रष्षस वर ।
तिहि सु जोत प्रथिराज सूर सामंत अस्ति भर ।
जीह जोति कवि चंद रूप संजोगि भोगि भ्रम ।
इक्क दीह उत्पन्न इक्क दीहै समाय क्रम ।।

इसका समर्थन रासो में एक अन्य स्थान पर भी प्राप्त हो जाता है -

ज्यों-भयौ जनम कवि चन्द कौ, भयौ जनम सामंत सब ।
इक धरन जनम मरनह सु हक, चलहि कित्ति ससि लग्गि रव ।

'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म अनन्द विक्रम शाक 1115 निकलता है -

एकादस सै पंच दह विक्रम साक अनंद ।
तिहि रिपु जयपुर हरन कौ भए प्रिथिराज नरिंद्र ।

इस प्रकार चन्दबरदाई का जन्म अनन्द संवत् 1115 अथवा विक्रमी संवत् 1206 निकलता है :

'पृथ्वीराज विजय' नामक ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म ज्येष्ठ मास की द्वादश को हुआ था । उसमें संवत् का उल्लेख नहीं है । 'बलभद्र विलास' नामक ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म माघ शुक्ला त्रयोदशी संवत् 1132 को हुआ था । पृथ्वीराज की मृत्यु संवत् 1192 सुनिश्चित है । इस प्रकार पृथ्वीराज एवं चन्द की आयु 167 वर्ष ठरहती है, जो असंगत है ।

जब तक कोई अन्य अधिक ठोस बहिरंग प्रमाण प्राप्त न हो, तब तक चन्दबरदाई का जन्म 1206 वि. ही मानना अधिक समीचीन है ।

1.5. नाम

'चन्दबरदाई' का वास्तविक नाम पृथ्वीचन्द अथवा पृथ्वीभट्ट था । परंतु उसने अपने नाम का उल्लेख केवल 'चन्द' शब्द द्वारा ही किया है । 'रासो' में भी चन्द नाम का ही उल्लेख मिलता है । 'रासो' में यत्र-तत्र चन्दबरदाई के लिये 'पहुमि वन्दीजन' अथवा 'पृथ्वी कवि' नामों का उल्लेख भी मिलता है ।

चन्द को देवी की सिद्धि प्राप्त थी और उसने देवी के दर्शन किए थे । देवी सरस्वती का वरदानी 'चन्द' आगे चलकर चन्दबरदाई कहलाया । अतः 'वरदाई' उसकी उपाधि थी । 'रासो' में उपलब्ध अनेक वाक्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है । देवी को निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य है ।

बिजै है मति राज, इक तिजौ बहु धरयौ ।
मोहि चन्दवरदाई, सु, अंतर मति शरयौ ।।

महोपाध्याय पं.हरप्रसाद शास्त्री ने 'वरदायी' शब्द का स्पष्टीकरण किया है । उसके अनुसार 'वरदायी' सम्भवतः अशुद्ध है, वह 'वरदिया' होना चाहिए । पठानों में वरदायी नामक एक जाति होती है । ये लोग अपने को चन्द का वंशी कहते हैं और अपने पूर्व पुरुषों को बलात् मुसलमान बना लिया जाना बतलाते हैं ।

जो भी हो, यह मत महोपाध्याय पं.हरप्रसादजी को भी मान्य है कि चन्द ज्वालादेवी का वरदानी था । पृथ्वीराज रासो के अनुसार तो वह दुर्गा और सरस्वती दोनों का वरदानी था । परंतु कवि होने का वरदान तो उसे वस्तुतः देवी सरस्वती द्वारा ही मिलता था -

या पुच्छी कवि चन्द को, हिय हरष्षत सुषदाय ।
जु कछु भयो सु कहो तुम, तुम बानी वरदाय ।।

सारांश यह है कि कवि का नाम 'चन्द' था और वह 'वरदायी' की पदवी धारण करके 'चन्दबरदाई' नाम से विख्यात हुआ ।

1.6. माता-पिता

'पृथ्वीराज रासो' में चन्दबरदाई की माता के नाम का कोई उल्लेख नहीं है । पिता के नाम का उल्लेख तीन प्रकार से मिलता है । **क.** वेन, **ख.** राव तथा **ग.** मल्हा 'वेन' नाम संदिग्ध है । 'मल्ह' नाम स्पष्टतः मिलता है :

बिन आयस प्रथिराज कै धाय नबायो बाज ।
को रहषे सुत मल्ह कौ, सुर नूर मुख लाज ।।

इसकी पुष्टि में एक छन्द सं. 5 समय 67 को भी उद्धृत किया जाता है । इस प्रकार चन्दबरदाई के पिता का नाम 'मल्ह' ही ठहरता है ।

1.7. जाति

चन्दबरदाई भट्ट जाति का था । 'पृथ्वीराज रासो' में इस संबंध में अनेक उद्धरण उपलब्ध हो सकते हैं ।

एक बार चन्द अपने स्वामी एवं सखा पृथ्वीराज के साथ शिकार खेलने गया । मार्ग भूल गये और एक ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे । ऋषि को उसने जो अपना परिचय दिया, उसमें 'भट्ट' जाति का स्पष्ट उल्लेख है ।

भट्ट जाति कवियन नृपति, नाथ नाम मो चन्द ।
आलस में गंगा बही, अब्ब गए सब दंद ।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रवृति विद्वानों ने चन्दबरदाई को

भट्ट जाति जगात गोत्र में उत्पन्न माना है, परंतु रासो में इसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है ।

1.8. धार्मिक मत

चन्दबरदाई ने रासो में अनेक देवताओं की स्तुति की है । इस कारण यह निश्चय करने में कुछ कठिनाई होती स्वाभाविक है कि वह किस मत के अनुयायी था । इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि उसका वही धर्म था जो धर्म उसके स्वामी एवं सखा पृथ्वीराज का था । अतः वह शैव था ।

1.9. विवाह एवं संतान

चन्दबरदाई के दो विवाह हुए थे । उसकी पत्नियों के नाम कमला अथवा मेवा तथा गौरी अर्थात् राजोरी था । उसकी दूसरी पत्नी गौरी उसके काव्य की प्रेरणा थी । इस कारण वह उससे अपेक्षाकृत अधिक प्रेम करता था । उसने स्पष्ट लिखा है कि गौरी ही पृथ्वीराज रासो के सृजन की मूल प्रेरणा थी । चन्दबरदाई की उक्त दोनों पत्नियों द्वारा दस पुत्रों का जन्म हुआ । इनके नामों का उल्लेख एक छन्द में किया गया है । इनके नाम हैं - 1. सूर, 2. सुन्दर, 3. सुजान, 4. जल्हन, 5. वल्ह, 6. बलिभद्र, 7. केहरि, 8. वीरचन्द, 9. अवधूत तथा 10. गुनराज । कुछ विद्वानों के मतानुसार उनकी पुत्री भी थी जिसका नाम राजबाई था ।

जल्हन उसको सर्वाधिक प्रिय था, क्योंकि वह सब पुत्रों में अत्यंत गुणज्ञ, एक विद्वान था । वह गजनी जाते समय उसी को पुस्तक सौंप गया था :

दहित पुत्र कवि चन्द के सुन्दर रूप सुजान ।
इक जल्लह गुन बावरो, गुन समन्द ससि मान ।।
आदि अन्त लगि वृत्त मन, वृन्नि गुनी गुन राज ।
पुस्तक जल्हन हस्त दै चलि गज्जन नृप काज ।।

1.10. वंशज

पृथ्वीराज ने नागौर बसाया था और वहीं बहुत सी भूमि चन्द को दी थी । नागौर में अब चन्द वंशज रहते हैं । इनके वंशधर पं.नानूराम भट्ट से महामहोपाध्याय पं.हरप्रसाद शास्त्री ने भेंट की थी और चन्द का वंश वृक्ष प्राप्त किया था । नानूराम का कहना है कि चन्द के पुत्रों की संख्या दस न होकर केवल चार थी ।

सूरदास कृत 'साहित्यलहरी' में एक पद के अंतर्गत सूरदास की वंशावली दी गई है । उसके अनुसार 'सूरदास' चन्दबरदाई के वंशज सिद्ध होते हैं ।

'साहित्यलहरी' में वर्णित परंपरा और नानूराम प्रदत्त परंपरा के मध्य केवल एक ही अंतर दिखाई देता है । नानूराम ने जिनको जयचन्द की वंश-परंपरा में बताया है, उनको सूरदास कृत 'साहित्यलहरी' में गुणचंद की परंपरा में बताया गया है । शेष नाम प्रायः वे ही हैं ।

पं.नानूराम का कहना है कि चंद ने कुल तीन-चार हजार श्लोक-संख्या में अपना काव्य लिखा था । उसके बाद उनके लंड़के जल्हन ने अंतिम दस 'समय' लिखकर उस ग्रन्थ को पूरा किया ।

1.11. चन्दबरदाई और पृथ्वीराज के मैत्रीपूर्ण संबंध

यह सर्वविदित है कि चन्द पृथ्वीराज के जीवन में एक दम घुल-मिल गया था । वह पृथ्वीराज का दरबारी कवि, सलाहकार, सहायक, विश्वासपात्र, मित्र सभी कुछ था । पृथ्वीराज रासो के कई छन्दों में कवि चंद और पृथ्वीराज के पारस्परिक दृढ़ मैत्रीपूर्ण संबंधों की चर्चा मिलती है । वह पृथ्वीराज के दरबार में उनके गुरु राम पुरोहित के समान श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होता था, तथा पृथ्वीराज के समान ही ठाट-बाट से रहता था ।

एक स्थान पर कवि चन्द ने पृथ्वीराज के स्नेह-बंधन का स्मरण बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में किया है :

हमहिं राज इक वास, सथ्थ उपन्ने संग सदि ।
नेह बंध बंधियै, करिय अति प्रीति राज रिदि ।।
सामंत संकल्प अति प्रेम तर, बाल नेह उर धुर कियौ ।
बलि भद्र-नेह संसार सुष, किम सुनेह छंडे जियौ ।।

अपनी खोज रिपोर्ट में डॉ. हरप्रसाद शास्त्री ने कवि चन्द और राजा पृथ्वीराज के दृढ़ संबंधों की चर्चा इस प्रकार की है - ''चंद का पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के दरबार में जाना तथा राजा और राजकुमार का प्रिय पात्र होना कहा जाता है । सिंहासन पर बैठने के उपरांत पृथ्वीराज ने नागौर और खाटू बसाये । उन्होंने चन्द को नागौर में विस्तृत भूमि दी जिस पर कवि के वंशजों का अब तक अधिकार है ।''

1.12. चन्द की बहुज्ञता

चन्दबरदाई हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकवि हैं । उनके साहित्य का निर्माणकाल हिन्दी-साहित्य के संघर्षमय अभ्युदय काल में हुआ था । राजनीतिक दृष्टि से संपूर्ण उत्तरी भारत युद्धों का मैदान बना हुआ था । सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदर्शों में भी भारी उथल-पुथल हो रही थी । पृथ्वीराज रासो के अंतर्गत कवि चन्द ने अपनी परिस्थितियों के प्रति जागरूकता का बहुत ही भली प्रकार परिचय दिया है । वह हमारे सामने एक स्वतंत्र चेता, युग कवि के रूप में आते हैं । उन्होंने कितना व्यापक ज्ञान और अनुभूति एवं बहिरंग-अंतर प्रकृति-पर्यवेक्षण किया, यह इनके पृथ्वीराज रासो द्वारा सहज ही बोधगम्य हो जाता है । एक विद्वान के शब्दों में ''पृथ्वीराज रासो चन्दबरदाई के व्यापक और विशाल ज्ञान एवं बुद्धि-कौशल का साक्षी है । उनका काव्य श्रेयमय प्रेम की प्रेरणामय धारा प्रवाहित करता है ।'' चन्दबरदाई के बहुविधि ज्ञान से कर्नल टाड तो इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे युगीन विश्व-इतिहास ही कह दिया था ।

1.12.1. चन्द चौदह भाषाओं का ज्ञाता और त्रैलोक की घटनाओं का जानन हार

काव्य-शास्त्र के प्रायः सभी विद्वानों ने कवि की बहु-विषयज्ञता पर बल दिया हैं । काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट ने तो स्पष्ट लिखा है कि लोक और शास्त्र का ज्ञाता होना कवि के लिए परम आवश्यक है ।

पृथ्वीराज रासो के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द का शास्त्र-ज्ञान विशाल था, उसका लोक-व्यवहार-ज्ञान व्यापक था तथा उसको विविध विषयों की अच्छी जानकारी थी । रासो में चन्द ने विषय-वस्तु, भाव और कला के विविध प्रयोग कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है । रस, अलंकार, व्याकरण, छन्द-शास्त्र, काव्य-शास्त्र, साहित्य दर्शन, तंत्र-मंत्र, इतिहास, पुराण, षट् भाषा सिद्धियों आदि के क्षेत्र में चन्द का ज्ञान बहुत ही व्यापक एवं उच्च कोटि का था । चन्द ने पृथ्वीराज रासो के अंतर्गत अपने आपको चौदह भाषाओं का ज्ञाता और त्रैलोक में घटने वाली घटनाओं का ज्ञाता घोषित किया है :

''विद्याह चतुरदस चित्त मोहि, बूझै तु कहौ त्रिभुवन होहि ।''

निम्नलिखित शीर्षकों में चन्दबरदाई के बहुविषयक ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है ।

1.12.2. चन्दबरदाई का भाषा-ज्ञान

चन्दबरदाई अनेक भाषाओं का ज्ञाता था । 'पृथ्वीराज रासो' के 16वीं समय में उल्लेख आता है कि वह छः भाषाओं का पंडित था । पंग दरबार का दसौंधी महाराज जयचन्द को, द्वार पर उपस्थित चन्द का परिचय इस प्रकार देता है -

भाषा षट नव रस पढ़त, वर पुच्छै कविराज ।
संप्रति पंग नरिंद कै, बर दरबार बिराज ।।
भाषा परिछा भाष छह, दस रस दुम्भर भाग ।
बित्त कबित्त जु छन्द सौं षग सम पिंगल नाग ।।

गजनी-नरेश शाह शहाबुद्दीन को स्वयं कवि चन्द अपने षट्-भाषा-ज्ञान का परिचय देते हुए कहते हैं कि :

षट् भाषा रस्स रव नट्ट नाद ।
जानो विवेक विच्चार बाद ।।

कवि चन्द ने पृथ्वीराज को भी छः भाषाओं का ज्ञाता कहा है और ऐसा क्यों न हो ? चन्द पृथ्वीराज चौहान का अंतरंग सखा और कवि था । उसके इस कथन के द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे छः भाषाएँ कौन सी थीं -

संस्कृत प्राकृत चैव, अपभ्रंश पिशाचिका ।
मागधी सूरसेनी च, षट् भाषाश्चैव जायते ।

डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी ने चन्दबरदाई के भाषा-ज्ञान के बारे में ठीक ही लिखा है कि "हम देखते हैं कि संस्कृत, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, इन भाषाओं का इस समय साहित्य तथा बोलचाल में काफी प्रचार था और बहुत संभव है कि 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित कवि चन्द की षट्-भाषा की जानकारी से इन्हीं भाषाओं की ओर संकेत हो ।"

1.12.3. पिंगल-शास्त्र का ज्ञान

कवि चन्दबरदाई ने रासो में 72 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । इनमें छन्दों की प्रायः समस्त कोटियां आ जाती हैं । वर्ण-गणना-प्रधान, मात्रा-गणना-प्रधान, संयुक्त गणना-प्रधान तथा अनेक अन्य छन्दों का प्रयोग हमें रासो में दिखाई देता है । इनमें कुछ ऐसे भी छन्द हैं जिनका निर्माण स्वयं रासोकार चन्द ने किया है - इनका प्रयोग न तो किन्हीं पूर्ववर्ती कवि ने किया है और न इनका उल्लेख किसी छन्द-शास्त्र में ही मिलता है । डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चन्द को छप्पयों का राजा कहा है । डॉ.नामवर सिंह के शब्दों में "वस्तुतः हिन्दी में चन्द को राजा कहा जा सकता है । रासो एक साथ ही संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की छन्द परंपरा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतन छन्द संगीत के

सूत्रपात की संधि बेला है ।'' डॉ.विपिन बिहारी त्रिवेदी ने तो इनके छन्द शास्त्र ज्ञान की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, ''चन्द ने अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है । कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहचान कर वर्णन और मात्रा की अद्‌भुत योजना करने वाला रासो का रचियता वास्तव में छन्दों का सम्राट है ।'' छन्दों की भांति अलंकारों का भी चन्द को विस्तृत ज्ञान था ।

1.12.4. साहित्य एवं काव्य-शास्त्र का ज्ञान

पृथ्वीराज रासो आदि से अंत तक चन्द के साहित्य एवं काव्य-शास्त्र ज्ञान का अनुशीलन है ।

चन्द मानव हृदय के सच्चे पारखी थ । 'पृथ्वीराज रासो' में विविध भावों (रति, हास, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, शोक, आश्चर्य, निर्वेद) की व्यंजना उनके रस-विषयक ज्ञान का परिचायक है ।

चन्द ने अपने इस महाकाव्य में शब्दालंकारों, अर्थालंकारों और उभयालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है । इतना ही नहीं इस क्षेत्र में उन्होंने नए-नए प्रयोग भी किए हैं ।

छन्द-शास्त्र का ज्ञान उन्हें खूब था ही । प्रायः सभी आलोचकों ने उनको छन्दों का राजा स्वीकार किया है । पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध भव्य वस्तु-वर्णन चन्द के लौकिक ज्ञान के अतिरिक्त साहित्य-शास्त्र की व्यापक जानकारी का भी परिचय देता है । नखशिख-वर्णन, षट्‌ऋतु-वर्णन, वयःसंधि-वर्णन, रूप-वर्णन, स्त्री-भेद वर्णन उनके शास्त्रीय ज्ञान के परिचायक हैं । व्यूह-वर्णन, पनघट वर्णन, युद्ध वर्णन आदि उनके लौकिक ज्ञान का परिचय देते हैं । इसमें कवि की लौकिक सूक्ष्म निरीक्षक प्रतिभा का परिचय मिलता है ।

1.12.5. धर्म, राजनीति, इतिहास, नवरस, व्याकरण आदि विविध विषयों का ज्ञान

चन्द का सामान्य ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ था । वह अनेक विषयों के ज्ञाता थे । उन्होंने अपने इस व्यापक ज्ञान का रासो में उल्लेख किया है । वह पुराण और कुरान के भी ज्ञाता थे :

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं ।
षट भाषा पुरानं च, कुरानं कथितं मया ।।

तथा

रासो बर बुद्धि सिद्धि, सुद्ध सो सब्ब प्रमानिय ।
राजनीति पाइयै ज्ञान पाइयै सु जानिय ।।
उकति जुगति पाइयै, अरथ घटि बढ़ि उनमानिय ।
या समान गुन, आप, देव नर नाग बखानिय ।।

इस कथन को चन्द की गर्वोक्ति न समझें । 'पृथ्वीराज रासो' में चन्द के उक्त विषयक ज्ञान के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं । यह ग्रंथ यथार्थतः साहित्यिक और लौकिक ज्ञान का भण्डार है ।

1.12.6. शास्त्रार्थ का ज्ञान

चन्द को विविध विषयों का ज्ञान तो था ही । वह शास्त्रार्थ में भी पारंगत थे । एक बार शहाबुद्दीन गोरी के हिन्दू कवि भट्ट दुर्गा केदार के साथ चन्द का शास्त्रार्थ हुआ । दोनों ही अपने हुनर के अधिकारी विद्वान थे । दोनों ही ने साहित्यिक दांव पेचों और तंत्र-मंत्रों का प्रदर्शन किया । इस शास्त्रार्थ में चन्द विजयी हुए । दुर्गा केदार ने चन्द की प्रशंसा की और उनको पुरस्कार देकर विदा किया ।

1.12.7. सिद्धियां, तंत्र-मंत्र और ज्योतिष का ज्ञान

चन्दबरदाई सिद्ध पुरुष कहे जाते हैं । उनको देवी के दर्शन

हुए थे और देवी ने उनको वरदान दिया था, जिसके फलस्वरूप उनको देवी की सिद्धि प्राप्त हुई थी, और वह सिद्धियों तथा तंत्र-मंत्र में पूर्णतः निष्णात हो गए थे । डॉ.हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि ''चन्द की वरदायी उपाधि का अर्थ है कि उसने एक देवी से कवि होने का वरदान प्राप्त किया । ये ज्वाला देवी थी और ज्वाला नामक स्थान में प्रतिष्ठित थीं ।''

चन्दबरदाई को देवी की सिद्धि थी, इसका उल्लेख रासो में कई स्थानों पर हुआ है । पृथ्वीराज रासो में कुछ ऐसे भी स्थल आये हैं, जिनमें देवी ने चन्द की सहायता की है । इसके उदाहरण 'कनक कथा-समय', 'दुर्गा भट्ट-केदार समय', एवं 'कनवज्ज समय' में मिलते हैं । देवी के वाक्य देखिए -

बिनै है मतिराज उकति जौ बहु धरयो ।
मोहि चन्द वरदाय, सु अंतर मति करयो ।

चन्द का तंत्र-मंत्र का ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा हुआ था । 'आपेटक वीर वरदान' समय 6 में इस बात का उल्लेख है कि उसने बाबन वीरों को वश में करने की दीक्षा एक यती से प्राप्त की थी ।

प्रसन्न चन्द सम जतिय, दिन्न एक मंत्र इष्ट जिय ।
रह अराधत भट्ट प्रगट पंचास वीर जय ।
करि साधन लहि साध व्याधि भासत फल धारिय ।
गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीन अकारिय ।।
धरि कान मंत्र लीनो कविय, दरसि पाइ अग्गे चलिय ।
करबे सु परिष्षा मंत्र की, रुचि आसन अग्गे बलिय ।।

चन्दबरदाई को सर्प बाँधने, दानव एवं दैत्यों का वध करने, भविष्य-वाणी करने, स्वप्न फल बताने, अदृश्य-वर्णन करने, गणों को अधीन करने आदि की सिद्धि प्राप्त थी । भैरों देवी को वशीकरण करने का मंत्र भी चन्द को इष्ट था और गाडुरी मंत्र का ज्ञान तथा उसकी सिद्धि उनको प्राप्त थी ।

1.12.8. युद्ध-कौशल का ज्ञान

'पृथ्वीराज रासो' वीरता प्रधान महाकाव्य है । इसमें आद्यांत युद्ध-वर्णन भरे पड़े हैं । युद्धों का ऐसा व्यापक एवं सजीव वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है । इसमें युद्ध-कौशल संबंधी चन्द का ज्ञान देखते ही बनता है । इसका एक विशेष कारण है । चन्द लेखनी के अतिरिक्त तलवार का भी धनी था । वह कविता ही नहीं करता था बल्कि एक वीर योद्धा की भाँति हाथ में तलवार लेकर युद्ध-स्थल में जाकर युद्ध भी करता था । चन्द के युद्ध-वर्णन कल्पना की करामात नहीं है । वे आँखों देखे सच्चे वर्णन हैं ।

पृथ्वीराज रासो में हमको सैन्य-सज्जा, सेना का प्रयाण, व्यूह-रचना, युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अस्त्र-शस्त्र आदि के बड़े ही सजीव वर्णन मिलते हैं । युद्धोत्साह एवं युद्ध-कौशल का एक उदाहरण देखिए -

कृपान हथ्थ चन्दयं, सुरागदेव बद्दयं
झरंत मीर अग्गयं, किकट्ट तट्ट गंगयं ।।
घटं सुघाव गुम्मयं, परेयु मीर झुम्मयं ।
लगे तुरंग अग्गयं संपूर लोह जंगयं ।।
फिरयो सुचन्द तब्बायं करन्न राज कब्बयं ।
लगे न घाव गातयं, सहाय द्रुग्ग मातयं ।
कुंजर पंजर छिद्र करि, फिर वरदायी चन्द ।।
तिन अन्दर जिद्धति भ्रमत, ज्यों कन्दरा मुनिदं ।

1.13. चन्दबरदाई की मृत्यु

चन्दबरदाई और पृथ्वीराज की मृत्यु एक साथ हुई थी । पृथ्वीराज की मृत्यु विक्रमी संवत् 1192 में हुई थी - यह एक ऐतिहासिक तथ्य है । अतः हम यह निर्विवाद रूप में कह सकते हैं कि चन्दबरदाई की मृत्यु 1192 वि. में हुई ।

चन्द और पृथ्वीराज की मृत्यु के संबंध में एक कहानी

प्रचलित है । कहते हैं कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी को कई बार परास्त किया था, परंतु वह मानता ही नहीं था । अंतिम आक्रमण के समय पृथ्वीराज ने चंद से कहा कि वह कांगड़ा दुर्ग के सामंत हाहुली हमीर को लिवा लाए । हाहुली हमीर किसी कारणवश पृथ्वीराज से अप्रसन्न हो गया था । इसी कारण उसको मनाने के लिये चंद को भेजा गया था, परंतु उसने चंद की एक भी नहीं मानी । उल्टे इसने धोखे से चंद को जालंधरी देवी के मंदिर में बंद करवा दिया और भाग कर गौरी का सहायक बन गया ।

पृथ्वीराज गोरी के हाथों पराजित हो गया । गोरी उसको कैद करके गजनी ले गया । उसने वहाँ पृथ्वीराज को अंध कारागार में बंद कर दिया ।

चन्दबरदाई ने किसी प्रकार जालंधरी देवी के मंदिर के कारावास से मुक्ति पाई और वह दिल्ली (योगिनीपुर) आया । वहाँ उसने ढाई महीने के भीतर रासो की रचना की और शेष रासो की रचना का उत्तरदायित्व अपने सुयोग्य पुत्र जल्हन को सौंप कर वह गजनी आया । लिखा है कि चलते समय उसने अपनी पुत्री और पुत्रों से विदा ली थी और वह योगी का वेष धारण करके गजनी पहुँचा :

उभै मास दिन अद्धवह, किय रासो चहुँआन ।
रसना भह सु चन्द की, बोलि उमा परमान ।
आदि अंत लग वृत्त मन, बुन्नि गुनी गुन राज ।
पुस्तक जल्हन हथ्थ वै, चलि गज्जन नृप काज ।

गजनी पहुँचकर उसने पृथ्वीराज से मिलना चाहा । पहले तो गोरी ने उसको पृथ्वीराज से मिलने की आज्ञा नहीं दी, परंतु जब चंद ने गोरी को पृथ्वीराज के युद्ध-कौशल की चर्चा करके द्वारा शब्द-बेधी बाण का अद्‌भुत चमत्कार दिखाने की आज्ञा मांगी, तो गोरी राजी हो गया । पृथ्वीराज के कौशल दिखाने के लिए एक बड़े समारोह का आयोजन किया । वह दिन गुरुवार (जुमेरात)

था । पृथ्वीराज का लक्ष्य-बेध कौशल देखने के लिये बहुत भारी भीड़ एकत्र थी । गोरी भी एक मंच पर बैठा था । पृथ्वीराज की आँखों पर पट्टी बाँध कर लाया गया । चन्दबरदाई ने अपने वाक्-चातुर्य द्वारा पृथ्वीराज को गोरी के मंच का संकेत दे दिया ।

चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान ।
ता ऊपर सुस्तान है, मत चूक्कै चौहान ।

आज्ञा मिलते ही पृथ्वीराज ने बाण चलाया । बाण गोरी के दांत, रसना, तालु आदि को बींधता हुआ पार गया - गोरी मृत्यु को प्राप्त हुआ । गोरी के सिपाही, अंग रक्षक आदि इन दोनों को मारने के लिए दौड़े । जब तक वे इनके पास पहुँचे, तब तक वे दोनों आपस में एक दूसरे को कटार मार कर इस लोक के परे जा चुके थे :

छुरिका कविंद जट मझझ थी, कट्टि भट्ट सोस अप ।
ता पाछे चन्दबरदाई ने, ददय राज वर हथ्थ नृप ।

इस प्रकार हिन्दी के आदि कवि तथा हिन्दी के प्रथम महाकाव्य के रचयिता कवि चन्दबरदाई ने अपने स्वामि-धर्म का पालन करते हुए स्वामी के साथ ही संसार से प्रयाण किया । उनके द्वारा वर्णित उनके स्वामी पृथ्वीराज का विमल यश आज भी दिग दिगंत में व्याप्त है :

इक्क दीह उपन्न इक्क दीहै समायक्रम
अथवा
इस थान जनम मरनहु सु इक,
चलहि कित्ति ससि लग्गि रव ।

1.14. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चन्दबरदाई को काव्य-शास्त्र के व्यापक गंभीर ज्ञान के अतिरिक्त अन्य अनेक शास्त्रीय एवं लौकिक विषयों का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त था । उनकी काव्य-साधना और असि-साधना साथ-साथ चलती थी । उनको

मंत्र-तंत्र जनित अनेक सिद्धियां भी प्राप्त थीं । ऐसे प्रकाण्ड पंडित कवि चन्दबरदाई ने रासो काव्य की रचना की जिसे हिन्दी काव्य क्षेत्र में प्रथम महाकाव्य माना गया है । चन्दबरदाई सचमुच अपने समय के ही नहीं, समस्त हिन्दी साहित्य के अत्युत्तम, अद्वितीय कविश्रेष्ठ हैं ।

1.15. बोध प्रश्न

1. चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालिए ।
2. चन्द की बहुज्ञता पर एक लेख लिखिए ।
3. पृथ्वीराज रासो के आधार पर चन्दबरदाई के जीवन-वृत्त का परिचय दीजिए ।

NOTES

NOTES

इकाई दो : रासो काव्य परम्परा

इकाई की रूपरेखा

2.0. उद्देश्य

2.1. प्रस्तावना

2.2. रासो काव्य की व्युत्पत्ति

2.3. रासो की परम्परा

2.3.1. रासो परंपरा के काव्य-ग्रंथ

2.4. डिंगल के रासो-ग्रंथ

2.4.1. आदिकाल में रचित रासो काव्य-ग्रन्थ

2.4.1.1. संदेश रासक

2.4.1.2. मंजुरास

2.4.1.3. भरतेश्वर बाहुली रास

2.4.2. पूर्व मध्यकाल (12वीं से 15 वीं शताब्दी) में रचित रासो ग्रंथ

2.4.2.1. बीसलदेव रासो

2.4.3. उत्तर मध्यकाल (17 वीं, 18 वीं तथा 19 वीं शताब्दी) के रासो ग्रन्थ

2.5. पिंगल (राजस्थानी तथा ब्रजभाषा अथवा प्राचीन ब्रजभाषा) के रासो ग्रन्थ

2.6. रासो काव्यधारा और पृथ्वीराज रासो

2.6.1. नृत्य गीत परक धारा

2.6.1.1. उपदेश रसायन

2.6.1.2. भरतेश्वर बाहुबली रास

2.6.1.3. बुद्धि रास

2.6.1.4. जीवदया रास

2.6.1.5. चन्दनबाला रास

2.6.1.6. जम्बूस्वामी रासा

2.6.1.7. रेवतगिरी रासु

2.6.1.8. नैमिजिणंद रासो (आबूरास)

2.6.1.9. गयसुकुमाल रास

2.6.1.10. सप्तक्षेत्रि रासु

2.6.1.11. पेथड रास

2.6.1.12. कच्छूलि रास

2.6.1.13. सपरा रासो

2.6.1.14. वीसलदेव रासो

2.6.2. छन्द-वैविध्य-परक धारा

2.6.2.1. भुजरास

2.6.2.2. सन्देश रासक

2.6.2.3. पृथ्वीराज रासो

2.6.2.4. हम्मीर रासो

2.6.2.5. बुद्धि रासो

2.6.2.6. परमाल रासो

2.6.2.7. राउ जैतसी रो रासो

2.6.2.8. विजयपाल रासो

2.6.2.9. राम रासो

2.6.2.10. राणा रासो

2.6.2.11. रतन रासो

2.6.2.12. कायम रासो

2.6.2.13. शत्रुसाल रासो

2.6.2.14. माँकण रासो

2.6.2.15. शकत सिंह रासो

2.6.2.16. हम्मीर रासो

2.6.2.17. खुमाण रासो

2.6.2.18. भगवंतसिंह कौ रासो

2.6.2.19. करहिया कौ रासो

2.6.2.20. रासा भइया बहादुरसिंह का

2.6.2.21. रायसा

2.6.2.22. हम्मीर रासो

2.6.2.23. कलियुग रासो

2.7. रासो काव्य-परंपरा में पृथ्वीराज रासो का स्थान

2.8. निष्कर्ष

2.9. बोध प्रश्न

2.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत रासो काव्य परंपरा की विशद चर्चा की जा रही है, जिसके अध्ययन के उपरांत आप -

1. रासो काव्य की व्युत्पत्ति तथा रासो की परंपरा से अवगत होंगे ;
2. डिंगल के रासो-ग्रंथों से परिचित होंगे ;
3. पिंगल राजस्थानी तथा ब्रजभाषा के रासो-ग्रंथों का परिचय प्राप्त करेंगे ;
4. इस काव्य-परंपरा की विभिन्न धाराओं, अर्थात् नृत्य गीत परक धारा तथा छन्द-वैविध्य परक धाराओं की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
5. इन विभिन्न धाराओं के अंतर्गत कई रासो-ग्रंथों का परिचय प्राप्त करेंगे ;
6. समग्र रासो काव्य-परंपरा से अवगत होंगे ।

2.1. प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अनेक वीरगाथाएँ लिखी गयीं जिन्हें 'रासो' कहा जाता था । यह धारा विशेष रूप से वीरगाथा काल अथवा आदिकाल में विकसित हुई थी । इसके बाद भी कुछेक रासो ग्रंथ लिखे गये हैं । इस काव्य-परंपरा में कई रासो ग्रंथों का उल्लेख मिलता है । इस सुदीर्घ काव्य-धारा की इस इकाई में चर्चा की जायेगी ।

2.2. रासो काव्य की व्युत्पत्ति

वीरगाथा काल में अनेक चरित काव्य लिखे गए । इन चरित-काव्यों के नामकरण 'रूपक', 'विलास', 'प्रकाश' अथवा 'रासो' आदि किए गये । हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथाकाल की काव्य-प्रेरणाओं एवं प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुये लिखा है कि "उस समय तो केवल

वीरगाथाओं की उन्नति सम्भव थी । ये वीरगाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं । प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों के रूप में । साहित्यिक प्रबंध के रूप में जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है, वह है ''पृथ्वीराज रासो ।'' वीर गीत के रूप में सबसे पुरानी पुस्तक 'वीसलदेव रासो' मिलती है, यद्यपि उसमें समयानुसार भाषा-परिवर्तन का आभास मिलता है । यहां पर वीरगाथा-काल के उन ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है जिनकी या तो प्रतियां मिलती हैं या कहीं उल्लेख मात्र पाया जाता है । ये ग्रंथ 'रासो' कहलाते थे ।'' आचार्य शुक्ल के इस कथन से स्पष्ट है कि वीरगाथा काल में वीरगाथाएँ रासो नाम से प्रचलित थीं । अब विचारणीय बात यह है कि रासो शब्द का अर्थ क्या है और इसका प्रयोग किस प्रकार की रचना के लिये किया जाता है । रासो शब्द की व्युत्पत्ति की समस्या को हल करने का प्रयास कई विद्वानों द्वारा किया जा चुका है, परंतु सुनिश्चित समाधान अभी तक प्रस्तुत नहीं किया जा सका है ।

'डिंगल' तथा 'पिंगल' शब्दों के समान 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है । फ्राँसीसी इतिहासकार गार्सा दि तासी इसकी व्युत्पत्ति 'राजसूय' से मानते हैं । क्यों मानते हैं, इसका उन्होंने कोई कारण नहीं दिया है । ऐसी स्थिति में तासी साहब की मान्यता को स्वीकार करना दुस्कर है ।

नरपति नाल्ह की एक पंक्ति ''नाल्ह रसायन आर भई, शारदा तूठी ब्रह्मकुमारि'' के आधार पर आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल 'रासो' शब्द की उत्पत्ति ''रसायण'' से मानते हैं । कुछ विद्वान इसका संबंध 'रहस्य से' जोड़ते हैं और कुछ 'रसिक' से । इसकी उत्पत्ति 'रसिक' से मानने वालों में नरोत्तम स्वामी प्रमुख हैं । उनका कहना है कि राजस्थानी में 'रसिक' का अर्थ 'कथाकाव्य' होता है । यही शब्द क्रमशः 'रासउ' और 'रासो' हो गया है । 'रासो' सम्भवतः ऐसे काव्य के लिये प्रचलित शब्द विशेष था जिसमें

वीर रस को विशेष महत्व दिया गया हो । ब्रजभाषा में 'रासो' शब्द झगडों के लिये प्रयुक्त होता है । तात्पर्य यह है कि युद्ध का वर्णन करने वाले ग्रंथ 'रासो' कहे गये ।

चन्द्रबली पांडेय 'रासो' की उत्पत्ति शुद्ध संस्कृत शब्द 'रासक' से मानते हैं । 'रासक' उपरूपक का एक भेद होता है । उनका कहना है कि 'पृथ्वीराज रासो' का आरम्भ नट-नटी की भांति कवि चन्द्र और उनकी पत्नी को लेकर हुआ है और आगे भी यह रूपक बना रहा । अतः सिद्ध होता है कि वस्तुतः रासो की रचना प्रदर्शन की दृष्टि से हुई थी और पृथ्वीराज की कीर्ति का कीर्तन ही इस प्रकार किया जाता है । डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसकी उत्पत्ति 'रासक' से मानी है । इस मत में पर्याप्त बल दिखाई देता है किंतु इसको स्वीकार करते समय हमारे सम्मुख एक कठिनाई आती है । सभी रासो ग्रंथों में 'रासक' के गुण उपलब्ध नहीं होते हैं ।

'काशी नागरी प्रचारिणी' सभा से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के संपादकों ने 'रासो' की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'रास' से मानी है । 'रास' शब्द संस्कृत में शब्दध्वनि, क्रीड़ा, श्रृंखला-विलास, गर्जन-नृत्य एवं कोलाहल आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है । डॉ.दशरथ ओझा ने इस मत का समर्थन बहुत ही तर्कपूर्ण शैली में किया है । उनका कथन है कि ''रासो मूलतः गानयुक्त नृत्य विशेष से क्रमशः विकसित होते-होते उपरूपक और फिर उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबंधों में परिणत हो गया । उक्त गानयुक्त नृत्य-विशेष से तात्पर्य 'रास' से है । रास ब्रज प्रांत का महत्वपूर्ण अभिनय है । उत्तर भारत में सर्वत्र रास-लीला का प्रचलन मिलता है । गीत-नृत्य के साथ रास रचाने का उल्लेख हमारे ग्रंथ श्रीमद् भागवत में भी मिलता है । कृष्ण और राधा की रास-लीला हमारे लिये अपरिचित नहीं है । अतः 'रास' शब्द से 'रासो' का विकास हुआ होगा ।''

एक विद्वान ने 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति 'रस' धातु से मानी है और उपर्युक्त मत का पिष्टपेषण किया है । इस प्रकार रास ने गेय रूपक के तत्व प्राप्त किए और फिर उसमें जब चरित्र का समावेश हुआ तब वह प्रबंध के रूप में विकसित हुआ । यही चरित्र-प्रधान रास गेय रूपक के तत्वों से युक्त होकर अपने कथानक को केवल काव्यमय प्रबंध के रूप में लेकर विकसित हुआ और 'रासो' कहलाया ।

महामहोपाध्याय पं.हरप्रसाद शास्त्री तथा श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाठक 'रासो' की उत्पत्ति 'राजपूत' शब्द से संबद्ध करते हैं । कतिपय विद्वान रासो की उत्पत्ति 'रभस' शब्द से मानते हैं, किंतु इसके लिये वे कोई नियम या आधार प्रस्तुत नहीं करते हैं । हाँ एक बात अवश्य है कि 'रभस' और 'रासो' दोनों शब्दों द्वारा व्यक्त प्रधान भावना एक ही है । रासो की प्रधान भावना उत्साह है और 'रभस' भी उसी का द्योतक है ।

कुछ विद्वान 'रासो' शब्द के मूल में 'रासऊ' शब्द को मानते हैं । उनकी मान्यता का आधार 'संदेश रासक' की यह पंक्ति है :

कह बहुरु विवि बदउ रासउ भासियह ।

इसमें प्रयुक्त शब्द 'रासउ' उनके विचार से 'रासक' और 'रासो' के बीच की कड़ी प्रतीत होती है । इस प्रकार इनके मतानुसार रासक से रासउ बना और रासउ से रासो बन गया । इसी प्रकार विद्वानों में रासो के समानार्थक अन्य शब्दों-रासु, राइसो, रायसा, राजसूय से भी 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया है ।

'रासो शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते समय विद्वानों ने रासो के समानार्थी प्रायः समस्त शब्दों पर विचार किया है । इतना ही नहीं, प्रायः प्रत्येक शब्द को किसी न किसी रूप में उसकी उत्पत्ति का हेतु भी बताया गया है । इन शब्दों में मुख्य हैं रहस्य, रास, रसायण, राजसूय तथा रासक । यह भी कहा जाता है कि

इस शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में ये समस्त धारणाएँ एवं कल्पनाएँ भ्रामक हैं । इन विभिन्न मतों से एक सामान्य ध्वनि निकलती है कि 'रासो' शब्द किसी एक ऐसी घटना के लिये प्रयुक्त होता चला आया है जो ऐतिहासिक महत्व रखती हो और ओज एवं शौर्य से ओत-प्रोत हो । इससे भी अधिक यह आवश्यक है कि उसमें युद्ध-वर्णन द्वारा वीरत्व-प्रदर्शन की भावना प्रमुख हो ।

2.3. रासो की परम्परा

चंदबरदाई हिन्दी के आदि कवि हैं और उनके द्वारा प्रणीत 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है । 'पृथ्वीराज रासो' वस्तुतः रासो काव्यों की एक निश्चित परंपरा का विकास है । रासो काव्य की परंपरा अपभ्रंश से आरंभ हुई । इसके पूर्व प्राकृत एवं संस्कृत में यह परंपरा नहीं मिलती है । अपभ्रंश से यह परंपरा पहले गुजराती में आई और फिर राजस्थानी एवं हिन्दी में प्रचलित हुई । इस प्रकार हिन्दी को रासो काव्य-परंपरा गुजराती से प्राप्त हुई । यह परंपरा आधुनिक काल के आरंभ तक दिखाई देती है ।

2.3.1. रासो परंपरा के काव्य-ग्रंथ

रासो-काव्य दो प्रकार की भाषाओं में लिखे गये हैं - डिंगल और पिंगल (राजस्थानी एवं ब्रजभाषा अथवा प्राचीन ब्रजभाषा) । इन ग्रंथों में चरित्र की प्रधानता है और ऐतिहासिकता का निर्वाह बहुत कम पाया जाता है । डिंगल और पिंगल का साहित्य अलग-अलग समृद्ध होता रहा है । इनके आकार-प्रकार, विषय-वस्तु एवं वर्णन-शैली भिन्न है ।

2.4. डिंगल के रासो-ग्रंथ

डिंगल में लिखे गये 'रासो' ग्रंथों की एक लम्बी परंपरा मिलती है । अध्ययन की सुविधा के विचार से रचना-कालानुसार इनको निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया गया है :

2.4.1. आदिकाल में रचित रासो काव्य-ग्रन्थ

विक्रम की 11 वीं शताब्दी से लेकर 13 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक लिखे जाने वाले ग्रंथों में तीन ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं - 1.संदेश रासक, 2. मंजुरास तथा 3. भरतेश्वर बाहुली रास । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

2.4.1.1. संदेश रासक

इस ग्रंथ की रचना मुल्तान के मुस्लिम कवि अब्दुल रहमान ने की । राहुल सांकृत्यायन ने इसका रचना-काल विक्रम की 11 वीं शताब्दी माना है और मुनि जिनविजय के अनुसार इसका रचना काल वि. की 12 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा 13 वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । इसमें एक प्रोषितपतिका नायिका (विरहणी) के विरह का बहुत ही मार्मिक वर्णन है । इसका ऋतु-वर्णन बहुत ही प्रभावशाली है ।

2.4.1.2. मंजुरास

इस ग्रंथ में मालवा के राजा मंजु और कर्नाटक के राजा तैलप की बहिन मृणालवती की प्रेम कहानी का वर्णन है । डॉ.विपिन बिहारी त्रिवेदी ने अपने ग्रंथ 'रेवातट' में इसका उल्लेख किया है और 'मंजुरास' को संदेश रासक से भी पूर्व की रचना बताया है । इसके कुछ छंद हेमचन्द्र कृत 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासनम्' तथा मेरुतुंग कृत 'प्रबंध चिन्तामणि' में मिलते हैं ।

2.4.1.3. भरतेश्वर बाहुली रास

इसका रचना-काल संवत् 1242 माना जाता है । इसके रचयिता का नाम शालिभद्र सूरि है । इस ग्रंथ में ऋषभदेव के दो पुत्र भरतेश्वर और बाहुबली के युद्ध का वर्णन है ।

कहते हैं कि शालिभद्र सूरि ने एक अन्य ग्रंथ 'बुद्धिरास' की

भी रचना की थी । जो भी हो 'भरतेश्वर बाहुबली रास' ही प्रसिद्ध रचना है ।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि 'संदेश रासक' रासो-परंपरा में प्रथम प्रामाणित रचना मानी जाती है ।

इसी कालावधि में एक अन्य ग्रंथ 'उपदेश रसायन रास' भी मिलता है, जिसके रचयिता जिनदत्त सूरि हैं । यह ग्रंथ नीति-काव्य-शैली में लिखा गया है और इसमें जैन-धर्म संबंधी सामग्री का बाहुल्य है । यद्यपि इसके नाम में 'रास' शब्द आता है, तथापि इसको रासो-परंपरा में नहीं गिना जा सकता है, क्योंकि यह वीर-काव्य परंपरा की कोटि में नहीं आता है । इस कालावधि में अन्य रासो काव्य-ग्रंथ लिखे गये, जिनमें उल्लेखनीय हैं : 1. कवि आसु कृत 'जीवनदयारस' तथा 'चन्दनबाल रास', 2. कवि वेल्हण कृत 'गयसुकुमाल रास' तथा 3. जीवधर कृत 'मुक्तावलि रास' ।

2.4.2. पूर्व मध्यकाल (12 वीं से 15 वीं शताब्दी) में रचित रासो ग्रंथ

12 वीं शताब्दी से लेकर 15 वीं शताब्दी तक की कालावधि में रासो काव्य का पर्याप्त विकास हुआ और अनेक रासो ग्रंथों की रचना हुई । इस युग में निर्मित ग्रंथों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

1. बीसलदेव रासो
2. जम्बूस्वामी रास
3. रेबन्तगिरि रास
4. कच्छनि रास
5. गौतम रास
6. दशार्णभद्र रास
7. वस्तुपाल-तेजपाल रास
8. श्रोणिक रास

9. पेथड़ रास
10. समरसिंह रास
11. सप्तक्षेत्रि रास
12. चन्दन बाल रास

उपर्युक्त ग्रंथों में गीत नृत्य-परंपरा का विकास दिखाई देता है । इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध प्राप्त ग्रंथ 'बीसलदेव रासो' है ।

2.4.2.1. बीसलदेव रासो

यह 'रासो' परंपरा का एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है । इसके रचयिता का नाम नरपति नाल्ह है । यह 100 पृष्ठों का ग्रंथ है । यह नृत्यगीत परंपरा का ग्रंथ है । इसका रचना-काल 11वीं शताब्दी माना जाता है । आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार वीर गीत रूप में यह सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है ।

इस ग्रन्थ में कवि ने प्रेम और विरह के मनोरम वर्णन लिखे हैं । इसमें राजमती के विरह का बड़ा ही मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण वर्णन हुआ है । इसमें एक ही छंद का प्रयोग हुआ है । इसमें वीर भावों का वर्णन बिल्कुल नहीं हुआ है । अतः इसको वीर-काव्य परंपरा का ग्रंथ नहीं माना जाना चाहिये । इसको प्रेमगीत-परंपरा का ग्रंथ मानना अधिक युक्तियुक्त होगा ।

2.4.3. उत्तर मध्यकाल (17 वीं, 18 वीं तथा 19 वीं शताब्दी) के रासो ग्रन्थ

पं.मोतीलाल मेनारिया, पं.नरोत्तम स्वामी, डॉ.दशरथ शर्मा तथा श्री अगरचन्द नाहटा ने रासो ग्रंथों की खोज में पर्याप्त श्रम किया है और परवर्ती काल में निर्मित कुछ रासो काव्य-ग्रंथों का पता लगाया है । यथा :

अ. 17 वीं शताब्दी के रासो ग्रंथ

1. ऋषभदास द्वारा रचित - कुमारपाल रास

2. माधौदास द्वारा रचित - रामरासो
3. सुमतिहंस द्वारा रचित - विनोद रासो

ब. 18 वीं शताब्दी के रासो ग्रंथ

1. डूँगर सी द्वारा रचित - छत्रसाल रासो
2. गिरधर चारण द्वारा रचित - संगतसिंह रासो
3. दलपति विजय द्वारा रचित - खुम्माण रासो

इनमें **'खुम्मान रासो'** सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें विविध छंदों में खुम्मानवंश का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ के विषय में बहुत-सी बातें संदिग्ध हैं । इसके संबंध में आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि ''यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय जो खुमान रासो मिलता है, उसमें कितना अंश पुराना है । उसमें महाराज प्रतापसिंह तक का वर्णन मिलने से यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि जिस रूप में यह ग्रंथ अब मिलता है, वह उसे वि.सं.17 वीं शताब्दी से प्राप्त हुआ होगा । यह नहीं कहा जा सकता कि दलपति विजय असली खुमान रासो का रचयिता था अथवा उसके परिशिष्ट का ।''

स. 19वीं शताब्दी के रासो ग्रंथ

उन्नीसवीं शताब्दी में प्रायः रासो ग्रंथों की परंपरा क्षीण हो जाती है । इस शताब्दी में लिखा हुआ केवल एक ही उल्लेखनीय रासो-ग्रंथ मिलता है । वह है - श्रीपालरास ।

17वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के बीच - इन तीन शताब्दियों के बीच हमें कुछ हास्य-मिश्रित रासो ग्रंथ भी मिलते हैं । इनमें चार ग्रंथों के नाम उल्लेखनीय हैं :

1. मांकण रासो
2. ऊंदर रासो
3. खीचड़ रासो
4. गोधा रासो

इनमें **'मांकण रास'** सर्वाधिक महत्वपूर्ण रासो है । इसके रचयिता का नाम कान्ह कीर्ति सुन्दर है । इसमें 39 छन्द हैं । इसका रचना-काल संवत् 1757 माना जाता है । इसमें विनोद की प्रधानता है ।

2.5. पिंगल (राजस्थानी तथा ब्रजभाषा अथवा प्राचीन ब्रजभाषा) के रासो ग्रन्थ

डिंगल के उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ रासो काव्य-ग्रंथों की रचना पिंगल में भी हुई । इनमें उल्लेखनीय ग्रंथ निम्नलिखित हैं :

1. हम्मीर रासो - शार्ङ्गधर
2. परमाल रासो - रचयिता का नाम अज्ञात
3. विजयपाल रासो - नल्हसिंह भट्ट
4. करहिया को राइसो - गुलाब कवि
5. कायम रासो - जान कवि
6. रतन रासो - कुम्भकर्ण चारण
7. राणा रासो - सिंधायचदयाल दास
8. हम्मीर रासो - जीधराज
9. बुद्धि रासो - जल्ह कवि
10. राउ जैतसी री रासो - रचयिता का नाम अज्ञात

इन रासो ग्रंथों में **'हम्मीर रासो'**, **'परमाल रासो'** तथा **'विजयपाल रासो'** को विशेष ख्याति प्राप्त है । इनमें भी सर्वाधिक प्रसिद्ध है **'विजयपाल रासो'** । इसमें विजयपाल की दिग्विजय का वर्णन है । इसमें वीर रस की प्रधानता है और इसमें केवल 42 छंद हैं ।

2.6. रासो काव्यधारा और पृथ्वीराज रासो

समय-समय पर कला और साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट प्रकार की परंपराएँ चलती रहती हैं । प्रचलित एवं उपलब्ध

काव्य-परंपराओं में रासो-काव्यधारा का प्रवाह अत्यंत विशाल, प्राचीन एवं गंभीर है । वीरगाथा काल या आदिकाल में यह धारा विशेष रूप से प्रवाहित और विकसित हुई थी, इसके पहले और बाद में भी इसका प्रवाह न्यूनाधिक मात्रा में बना रहा । इस धारा का सम्यक् अध्ययन करने के लिये इसे दो शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है - नृत्यगीतपरक धारा और छन्द वैविध्य परक धारा । इसी प्रकार रस की दृष्टि से भी इसके दो रूप या भेद माने जा सकते हैं - 1. कोमल और 2. उद्धता । एक तीसरा समन्वित रूप भी स्वीकारा जा सकता है ।

2.6.1. नृत्य गीत परक धारा

इस धारा के अंतर्गत उपदेश रसायन, भरतेश्वर बाहुबली रास, बुद्धि रास, जीव दया रास, चंदनबाला रास, जंबूस्वामी रासा, रेवतगिरि रासु, नेमिजिणंद रासो, आबूरास, गयसुकुमाल रास, सप्तक्षेत्रि रासु, पेथड़ रास, कच्छूलि रास, समरा रासु और बीसलदेव रास आदि रचनाएँ आती हैं । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

2.6.1.1. उपदेश रसायन

यह कृति रासो काव्य धारा की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचना स्वीकारी जाती है । इसके रचियता हैं श्री जिनदत्त सूरि । यद्यपि इस कृति में इसका रचना काल नहीं दिया हुआ है, तथापि यह अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना संवत् 1200 वि. के कुछ बाद हुई होगी, क्योंकि सूरि की अन्य रचना 'कालस्वरूप कुलक' का रचनाकाल संवत् 1200 वि. है । निश्चय ही 'उपदेश रसायन' की रचना इसके बाद हुई होगी ।

इस रचना की भाषा अपभ्रंश है । इसमें काव्य तत्व का नितांत अभाव है । छन्द और चौपाइयों में धर्म के मर्म का विवेचन किया गया है । इसमें कुल 32 छन्द हैं । नाम के अनुरूप इसमें

उपदेश की प्रधानता है । इसे रसात्मक दृष्टि से 'कोमल' के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

2.6.1.2. भरतेश्वर बाहुबली रास

इसके रचयिता श्री शालिभद्र सूरि हैं । इसका रचना काल संवत् 1241 वि. है -

संवतए बारक एतालि फागुण पंचमिइ एउ कीउ ए ।

इस कृति में भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों का भरतेश्वर और बाहुबली का राज्य सत्ता के लिए संघर्ष वर्णित है । इसकी कथा 203 छन्दों में समाप्त हुई है । इसमें वीर रस की प्रधानता की दृष्टि से 'उद्धत' के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

2.6.1.3. बुद्धि रास

इसके रचयिता भी श्री शालिभद्र सूरि हैं । यद्यपि इसमें इसका रचना काल नहीं दिया हुआ है, अनुमानतः इसकी रचना संवत् 1241 ई. के लगभग हुई होगी । इसमें धर्मोपदेश की प्रधानता है, भूले लोगों को शिक्षा देना इसका उद्देश्य है । इसमें कुल 63 छन्द हैं । रस की दृष्टि से इसे 'कोमल' के अंतर्गत रखना ही समीचीन प्रतीत होता है ।

2.6.1.4. जीवदया रास

इसके लेखक श्री अगसु हैं और इसका रचनाकाल संवत् 1257 वि. है । जीवों के ऊपर दया करने का उपदेश देना इस रचना का प्रतिपाद्य है । उपदेशात्मकता की प्रधानता के कारण इसमें काव्यात्मकता का अभाव है । 'करुण' रस की प्रधानता के कारण यह भी 'कोमल' के अंतर्गत ही आता है ।

2.6.1.5. चन्दनबाला रास

इसके लेखक भी श्री आगसु हैं । इसकी रचना अनुमानतः संवत् 1257 वि. के आसपास हुई होगी । चन्दनबाला की धार्मिक

कथा व्यक्त करना इस रचना का उद्देश्य है । इसमें कुल 35 छन्द हैं । करुण और शोक की भी अन्तिम परिणति शांत में होने के कारण यह भी 'कोमल' भेद के अंतर्गत आता है ।

2.6.1.6. जम्बूस्वामी रासा

इसके लेखक श्री धर्म सूरि हैं । इसका रचनाकाल संवत् 1236 वि. है । जम्बूस्वामी के चरित्र का वर्णन करना इस रचना का उद्देश्य है । रस की दृष्टि से इसे भी 'कोमल' के अंतर्गत रखना अधिक समीचीन है ।

2.6.1.7. रेवतगिरि रासु

इसके लेखक श्री विजय सेन सूरि हैं । रचनाकाल संवत् 1288 वि. के आसपास है । इसमें गिरनार के जैन मंदिरों के जीर्णोद्धार की कथा कही गई है । यह कथा 72 छन्दों में समाप्त हुई है । यह एक 'कोमल' काव्य है ।

2.6.1.8. नैमिजिणंद रासो (आबूरास)

इसके रचयिता श्री माल्हण हैं । रचनाकाल संवत् 1289 वि. है । जैन कवियों की अन्य रचनाओं के अनुरूप 'कोमल' कांत भावों का संचार करना ही इसका उद्देश्य है ।

2.6.1.9. गयसुकुमाल रास

इस कृति के रचयिता नेल्हणि हैं । रचनाकाल संवत् 1300 वि. के लगभग है । इसका उद्देश्य गयसुकुमार के चरित्र का वर्णन करना है । यह भी 'कोमल' श्रेणी का ही चरित्र प्रधान काव्य है ।

2.6.1.10. सप्तक्षेत्रि रासु

इस कृति की रचना संवत् 1327 वि. में हुई थी । इसके रचयिता का अभी तक नाम ज्ञात नहीं हो सका है । इसमें सप्तक्षेत्रों - जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु साध्वी, श्रावक

और श्राविका की उपासना का वर्णन है । वह वर्णन 115 छन्दों में समाप्त हुआ है । इसकी परंपरा भी उपरोक्त ही है ।

2.6.1.11. पेथड रास

इस रचना के रचयिता पंडलिक और इसका रचनाकाल संवत् 1360 वि. है । इसमें संघपति पेथड के चरित्र का वर्णन है । इस रचना में कुल 65 छन्द हैं । यह 'कोमल' काव्य है ।

2.6.1.12. कच्छूलि रास

इस रचना का रचना काल संवत् 1363 वि. है । इसमें कच्छूलि गुण का वर्णन है । कुल 35 छन्दों में यह रचना समाप्त हुई है और 'कोमल' परंपरा में ही आती है ।

2.6.1.13. सपरा रासो

इसके लेखक श्री अंबदेवसूरि हैं और रचना काल संवत् 1371 है । इस रचना में कुल 110 छन्द हैं । इसकी दृष्टि से इसकी अर्णे कोमल है ।

2.6.1.14. बीसलदेव रासो

इस रचना के रचयिता नरपति नाल्ह हैं । इस रचना के रचनाकाल के विषय में निर्विवाद रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । इसकी रचना संभवतः 1399 वि. के आसपास हुई होगी । इसमें महाराज वीसलदेव की प्रवास-कला का वर्णन है । महाराज अपनी नव-विवाहित पत्नी राजमति के व्यंग्य बाणों से आहत होकर उड़ीसा की यात्रा पर निकल पड़ते हैं । पति-विहीना राजमती वियोग दुःख से बहुत दुःखी होती है और अंत में अपने राजपुरोहित को महाराज को लौटाकर लिवा लाने के लिए उड़ीसा भेजती है । महाराज लौट आते हैं और राजा रानी का पुनर्मिलन होता है ।

इस पुस्तक में श्रृंगार रसांतर्गत वियोग पक्ष का बहुत ही प्रभावशाली वर्णन हुआ है । अतः 'कोमल' काव्य है, फिर भी जाने क्यों आचार्य शुक्ल ने इसकी गणना वीर काव्यों के अंतर्गत की है ।

2.6.2. छन्द-वैविध्य-परक धारा

इस धारा के अंतर्गत ये कृतियाँ आती हैं - मंजु रास, संदेश रासक, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, बुद्धि रासो, परमाल रासो, राउ जैतसी री रासो, विजय पाल रासो, राम रासो, राणा रासो, कायम रासो, शत्रुसाल रासो, मांकण रासो, संगतसिंह रासो, हम्मीर रासो, खुमाण रासो, भगतसिंह कौ रासो, कहरिया कौ रासो, रासा भइया बहादुर सिंह का, रायसा हम्मीर रासो और कलियुग रासो ।

2.6.2.1. मंजुरास

इस पुस्तक का पता उद्धृता रूप से चलता है । इसकी अभी कोई-कोई अविकल प्रति नहीं प्राप्त हुई है । इसका रचना काल संवत् 1190 वि. के आसपास अनुमानित किया जाता है । इसमें महाराज मंजु की कथा का वर्णन है । श्रृंगार और वीर का समन्वय होने के कारण इसे मिश्रित या समन्वित परंपरा में रखा जा सकत है ।

2.6.2.2. सन्देश रासक

इसके रचयिता अब्दुर्रहमान हैं । इसका रचना काल निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता । अनुमान किया जाता है कि शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण से कुछ पूर्व इसकी रचना हुई होगी । इसका विषय वियोग श्रृंगार की विविध अवस्थाओं का चित्रण करना है । जैसलमेर की एक विरहिणी अपने पति के पास संदेश भेजना चाहती है । उसे एक पथिक आता हुआ दिखाई देता है । उस पथिक को रोककर वह अपने प्रियतम के लिए उसे संदेश देती है । ज्यों ही पथिक चलने लगता है वह फिर और शब्दों में

अपनी व्यथा को व्यक्त करने में स्वयं को असमर्थ पाकर रो पड़ती है । विरह के अंतर्गत आने वाली षडऋतुओं का इसमें सुंदर एवं विस्तृत वर्णन है । यह रस की दृष्टि से विशुद्ध 'कोमल' काव्य है ।

2.6.2.3. पृथ्वीराज रासो

इस काव्यधारा का यह सबसे अधिक विशाल और प्रसिद्ध ग्रंथ है । इसकी प्रमाणिकता एवं अप्रमाणिकता को लेकर हिन्दी-संसार में जो द्वन्द्व छिड़ा, ऐसा विश्व की किसी कृति के विषय में कभी नहीं हुआ । अभी तक वह द्वन्द्व अनिर्णीत रूप में चल रहा है । इस ग्रंथ के रचयिता महाकवि चंदबरदाई हैं, जो महाराज पृथ्वीराज के सखा एवं मंत्री थे । कहा जाता है कि ये दोनों एक दिन ही उत्पन्न हुए और एक दिन ही स्वर्गवासी हुए । इस ग्रंथ में महाराज पृथ्वीराज के अनेक विवाहों एवं युद्धों का सजीव वर्णन किया गया है । इसमें श्रृंगार एवं वीररस की सुन्दर योजना हुई है । रस की दृष्टि से यह विशुद्ध मिश्रित या समन्वित काव्य है । इसमें 'कोमल' और 'उद्धता' भेदों का सुंदर समन्वय हुआ है ।

2.6.2.4. हम्मीर रासो

इस पुस्तक के केवल कुछ उद्धृत छन्द ही मिलते हैं । इस कृति के नाम से यह अनुमान किया जाता है कि इसका वर्णन विषय राणा हम्मीर देव के चरित्र का बखान करना होगा । इसके रचनाकाल के विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना 14वीं या 15वीं शताब्दी में हुई होगी । इस काव्य में वीररस की प्रधानता होगी । अतः इसे 'उद्धता' श्रेणी में ही रखा जायेगा ।

2.6.2.5. बुद्धि रासो

इस कृति के रचयिता जल्हण कवि हैं । किन्तु अभी तक

कवि के विषय में कोई विशेष विवरण ज्ञात नहीं हो सका है । सम्भवतः यह चंदबरदाई का वही बेटा है जिसे अपनी रचना का दायित्व सौंप वे गजनी चले गए थे । रचना का वर्ण-विषय प्रेम-कथा है ।

इस रचना में कुल 140 छन्द हैं । यदि जल्हण कवि चंदबरदाई का बेटा है तो कहना पड़ेगा कि उसने पिता की परंपरा को त्याग दिया और रस की दृष्टि से 'कोमल' परंपरा का पालन किया ।

2.6.2.6. परमाल रासो

यह कृति बहुत काल तक पृथ्वीराज रासो के महोबा खण्ड के रूप में रही । सर्वप्रथम डॉ.श्यामसुन्दर दास ने इसे उससे पृथक करके यह रूप दिया । इस कृति का लेखक कौन है, तथा किस संवत् में यह लिखी गई, ये दोनों प्रश्न ही उत्तरातीत हैं । इसे भी 'कोमल' और 'उद्धता' का मिश्रित रूप ही स्वीकारा जा सकता है ।

2.6.2.7. राउ जैतसी री रासो

इस ग्रंथ के रचयिता का अभी तक पता नहीं चल सका है । वर्णित घटना के आधार पर इस कृति का रचनाकाल संवत् 1600 वि. के आसपास माना जाता है । इसमें बीकानेर के महाराज जैतसी तथा हुमायूं के भाई कामराँ के उस युद्ध का वर्णन हुआ है जिसमें कामराँ को पराजित होकर लौटना पड़ा था ।

यह रचना 90 छन्दों में समाप्त हुई है । भाषा डिंगल है और वीररस की प्रधानता है । अतः 'उद्धत' परंपरा के अंतर्गत आता है ।

2.6.2.8. विजयपाल रासो

इस कृति के रचयिता नल्हसिंह भट्ट हैं । इनका ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक इतिवृत्त उपलब्ध नहीं हुआ है । इसका

रचनाकाल संवत् 1607 के आसपास अनुमानित किया जाता है । इसका विषय विजयपाल की दिग्विजय का काव्यमय वर्णन करना है । इसमें वीररस की प्रधानता है । इस रचनार के अभी तक केवल 42 छन्द प्राप्त हुए हैं । उनके आधार पर उसे भी 'उद्धता' परंपरा में रखा जा सकता है ।

2.6.2.9. राम रासो

इस पुस्तक के रचयिता माधवदास चारण हैं । इसका रचनाकाल संवत् 1675 है, जो इस पुस्तक के इन शब्दों में दिया हुआ है -

'संवत्' सोरै से समै अर पचोतरै प्रमाण ।
कथतं माधव दास कवि लिखतं भगत कल्याण ।।

यह भगतों के कल्याण के लिए लिखी गई है । इस पुस्तक में राम की महत्ता का वर्णन है । इस ग्रंथ में 1600 छन्द हैं और वे 'कोमल' श्रेणी के ही हैं ।

2.6.2.10. राणा रासो

इस कृति के रचयिता दयाल कवि (दयाराम कवि) हैं । इसमें रचनाकाल नहीं दिया हुआ है । अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना संवत् 1675 वि. के आसपास हुई होगी । इस कृति में सीसौदिया-वंश का इतिहास दिया हुआ है । सीसौदिया-वंशी राजाओं में कुम्भा, उदयसिंह, प्रतापसिंह तथा अमरसिंह के जीवनवृत्तों का विस्तार से वर्णन किया गया है । इसकी 'छन्द संख्या 875' है । वीर रस की प्रधानता के कारण यह 'उद्धता' के अंतर्गत आता है ।

2.6.2.11. रतन रासो

इसके लेखक कुम्भकर्ण हैं । रचना काल संवत् 1675 वि. अनुमान किया जाता है । इसमें रतलाम के राणा रतनसिंह के

चरित्र का वर्णन किया गया है । इसे समन्वित या मिश्रित परंपरा में रखा जा सकता है ।

2.6.2.12. कायम रासो

इसके रचयिता न्मामखाँ 'जानकवि' हैं । इसकी रचना संवत् 1691 वि. में हुई थी । इसका विषय कायमखानी वंश की महत्ता का वर्णन करना है । अलमखाँ का चरित्र विशेष रूप से वर्णित किया गया है । ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना बहुत ही महत्वपूर्ण है । उसे रस 'मिश्रित' परंपरा में रख सकते हैं ।

2.6.2.13. शत्रुसाल रासो

इस कृति के रचयिता बूदी के राव डुंगरसी हैं । अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना संवत् 1710 वि. के आसपास हुई होगी । इसमें बूदी महाराज शत्रुसाल का जीवनवृत्त काव्यमय ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इसमें वीररस की प्रधानता है । अतः 'उद्धता' काव्य है ।

2.6.2.14. माँकण रासो

इसके रचयिता कान्ह कीर्ति सुंदर हैं । रचना काल संवत् 1757 है -

संवत सत्त सत्तानवे महानगर श्री मेड़ते ।
कान्ह जी एह रामो कियौ छलासु खटमल छेड़ते ।।

यह विनोदपूर्ण रचना है क्योंकि इसमें खटमल के चरित्र का विविध विनोदात्मक रीतियों से वर्णन किया गया है । इसमें केवल 36 छन्द हैं । व्यंग्य-विनोद की ही मुख्यता होने के कारण इसे 'कोमल' श्रेणी का काव्य कहेंगे ।

2.6.2.15. शकत सिंह रासो

इसके लेखक गिरधर चारण हैं । श्री मोतीलाल मेनारिया के

मतानुसार इसका रचनाकाल संवत् 1720 वि. के लगभग है । इसमें राणा प्रताप के भाई शक्तसिंह तथा उनके वंशजों की महत्ता का वर्णन किया गया है । मुख्य रस वीर है । अतः 'उद्धता' के अंतर्गत आता है । छन्द संख्या 943 है ।

2.6.2.16. हम्मीर रासो

इसके रचयिता जोधराज हैं और रचनाकाल संवत् 1785 है । इसमें महाराणा हम्मीर के चरित्र का वर्णन किया गया है । इसमें वीर रस की प्रधानता है । छन्द संख्या 1000 के लगभग है । इसे विशुद्ध रूप से 'उद्धता' श्रेणी की रासो-परंपरा में रखा जाता है ।

2.6.2.17. खुमाण रासो

इसके रचयिता दलपति विजय हैं, जिन्हें दौलत विजय भी कहा जाता है । इस रचना का रचना-काल 17 वीं शताब्दी अनुमानित किया जाता है । इसमें मेवाड़ के खुमाण अथवा सूर्यवंश की महत्ता का वर्णन किया गया है ।

'कबि दीजै कमला कला जोडण कबित जुगत्ति ।
सूरिज बंस तणौ सुजस वरणन करूं बिगत्ति ।।'

काव्यकला की दृष्टि से यह कृति भावात्मक है । अतः रस की दृष्टि से इसे 'कोमल' परंपरा में रखना ही उचित प्रतीत होता है ।

2.6.2.18. भगवंतसिंह कौ रासो

इसके लेखक सदानन्द हैं । अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना संवत् 1793 वि. के पश्चात् हुई होगी । इसमें भगवंतसिंह के चरित्र का वर्णन किया गया है । वीर रस मुख्य है और छन्द संख्या 104 है । वीर रस की मुख्यता रहते हुए भी अन्य रसों का वर्णन हुआ है । अतः यह 'मिश्रित' श्रेणी का काव्य है ।

2.6.2.19. करहिया कौ रासो

इस ग्रंथ के रचयिता गुलाब कवि हैं । इसका रचनाकाल संवत् 1834 है । इसमें करहिया के परमारों तथा भरतपुर के राव जवाहरसिंह के मध्य सं.1834 में हुए युद्ध का वर्णन है । इसमें वीर रस की प्रधानता है । अतः विशुद्ध रूप से 'उद्धता' की श्रेणी में आता है ।

2.6.2.20. रासा भइया बहादुरसिंह का

इसके लेखक शिवनाथ हैं । रचना-काल संवत् 1853 वि. है । इसमें बलरामपुर के राजा बहादुरसिंह के चरित्र का वर्णन किया गया है । मुख्यता वीर रस की है । पर 'मिश्रित' के अंतर्गत रखना ही उचित है ।

2.6.2.21. रायसा

यह कृति भी शिवनाथ की है । इसमें धारा के महाराज जसवंत सिंह तथा रीवां के महाराज अजीतसिंह के युद्ध का वर्णन है । वीर रस की प्रधानता है । युद्धों का सजीव और सर्वांगीण वर्णन ही इसका मूल कथ्य है । अतः इसे 'उद्धता' के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

2.6.2.22. हम्मीर रासो

इसके लेखक महेश कवि हैं । इसमें जोधराज कवि की भाँति महाराज हम्मीर के जीवनवृत्त का वर्णन किया गया है । इसमें वीर रस की प्रधानता है । छन्द संख्या लगभग 900 हैं । इसे विद्वान विशुद्ध रूप से 'उद्धत' के अंतर्गत रखते हैं ।

2.6.2.23. कलियुग रासो

इस कृति के रचयिता कवि रसिक गोविन्द हैं । इसका रचना-काल संवत् 1865 है । इस पुस्तक में कलिकाल के कुप्रभाव का वर्णन है । कुल लगभग 70 छन्द हैं । यह रचना

अपनी भाषा के कारण और छन्दों का दुराग्रह न होने के कारण अन्य रासो-काव्यों से एकदम भिन्न है । इसे रसात्मकता की दृष्टि से 'मिश्रित' या 'समन्वित' के अंतर्गत ही रख सकते हैं ।

रासो काव्य धारा पर संक्षिप्त दृष्टिपात करने से जो निष्कर्ष निकलते हैं, वे डॉ.माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में ये हैं -

1. 'रास' तथा 'रासो' नामों में कोई भेद नहीं है, दोनों नाम एक ही अर्थ में और कभी-कभी साथ-साथ एक ही रचना में प्रयुक्त हुए हैं ।

यह धारणा निराधार है कि 'रास' कोमल भावनाओं का परिचायक रहा है और 'रासो' युद्धादि-संबंधी कठोर भावों का । यदि देखा जाय तो और भी अनेक प्रकार के विषय रासो काव्यों के विषय बने हैं । अतः 'रास' या 'रासो' में भेद न मानते हुए भी विषय-वर्णन और रस-वर्णन की दृष्टि से तो उन्हें 'कोमल' या 'उद्धत' के अंतर्गत रखा जाता है । इसी कारण यहाँ पर इस परंपरा के काव्यों का ऐसा विभाजन निर्देशित करने का प्रयास किया गया है ।

2. 'रासो' के अंतर्गत प्रबंध की दो विभिन्न परंपराएँ आती हैं । एक तो गीत-नृत्य परक है और दूसरी छन्द-वैविध्य परक । पहली का उद्‌भव कदाचित् नाट्य रासकों से हुआ है और दूसरी का रासक या रासा-बंध से । दोनों परंपराओं को मिलाया नहीं जा सकता ।

3. गीत-नृत्य-परक परंपरा की रचनाएँ आकार में प्रायः छोटी हैं, क्योंकि उन्हें स्मरण करना पड़ता था, जबकि छन्द-वैविध्य-परक परंपरा में रचनाएँ छोटी-बड़ी सभी आकारों की हैं ।

4. गीत-नृत्य-परक परंपरा का प्रचार जैन-धर्मावलम्बियों में अधिक रहा है । उनके रचे हुए प्रायः समस्त 'रासो' इसी परंपरा में हैं । दूसरी परंपरा का प्रचार जैनेतर समाज में विशेष रहा है । अब यह प्रमाणित हो चुका है कि इनका भी अभिनयात्मक-गायन होता रहता है । आज भी सामान्य रूप में हो रहा है ।

5. जैन रचनाओं की भाषा बहुत पीछे तक अपभ्रंश-बहुला रही, जबकि अन्य रचनाओं की भाषा युगीन बातचीत हो गई थी ।

6. गीत-नृत्य-परक रासो रचनाएँ प्रायः पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में ही लिखी गई थीं, जबकि छन्द-वैविध्य-परक रासकों की रचना सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में हुई ।

7. काव्य का दृष्टिकोण दूसरी ही परंपरा में प्रधान रहा, प्रथम में नहीं और इसलिए शुद्ध साहित्य की दृष्टि से दूसरी परंपरा प्रथम की अपेक्षा अधिक महत्व की है । इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इन्हें वीरगाथात्मक कहकर वीर गाथा काल के अंतर्गत गिनाया ।

8. चरित्र तथा काव्यधाराओं के समान ही यह रासो काव्यधारा भी साहित्य की एक समृद्ध काव्यधारा रही है और इसका गंभीर अध्ययन नितांत अपेक्षित है ।

2.7. रासो काव्य-परंपरा में पृथ्वीराज रासो का स्थान

पृथ्वीराज रासो एक प्रसिद्ध एवं पुष्ट ग्रंथ है । इसकें छोटे-बड़े अनेक संस्करण मिलते हैं । प्रस्तुत रूप में यह एक विशाल ग्रंथ है । यह विविध छंदों से युक्त एक विशाल ग्रंथ है । इसको हिन्दी के प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है ।

पृथ्वीराज रासो के पूर्ववर्ती रासो-काव्य-ग्रंथों में मंजुरास, 'सेदंस रासक', 'भरतेश्वर बाहुबली रास' तथा 'बीसलदेव रासो' के नाम आते हैं । इसके परवर्ती रासो काव्य-ग्रंथों में तीन प्रमुख हैं - 'हम्मीर रासो', 'परमाल रासो' तथा ''विजयपाल रासो' । आकार अथवा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती कोई भी रासो काव्य-ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' की समानता नहीं कर सकता है । यह एक विशाल काव्य-ग्रंथ है । यह एक महाकाव्य है और इसमें महाकाव्य के समस्त लक्षणों का निर्वाह पाया जाता है । अन्य कोई भी रासो-ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' का सम्मान प्राप्त नहीं कर सका है । यह वीरगाथाकाल के काव्य-ग्रंथों में सर्वाधिक श्रेष्ठ ग्रंथ है । इसके महत्व के उद्‌घाटन के लिये मिश्रबंधु का यह

कथन पर्याप्त है - ''चंदबरदाई की कविता से प्रकट होता है कि वह प्रौढ़ रचना है और छंद आदि की रीतियों पर उसमें ऐसा अनुगमन हुआ है कि जान पड़ता है यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलते थे और स्वयं इन्हीं ने हिन्दी काव्य-रचना की नींव डाली ।''

इस विशाल काव्य-ग्रंथ में वर्णन-विस्तार, छन्दों की विविधता, प्रबंध-सौष्टव, कलात्मकता, वाग्वैदग्ध, आदि सभी कुछ उपलब्ध है । कला-विस्तार, वस्तु-विन्यास, वर्णन-कौशल आदि प्रत्येक दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' रासो काव्य-परंपरा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होने के कारण इसका गौरव और भी अधिक हो जाता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रासों काव्यधारा में पृथ्वीराज रासो का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । बल्कि यों कहना चाहिए कि कृष्ण-भक्ति धारा में सूरदास का और रामभक्ति-धारा में समचरितमानस का जो स्थान है, रासो काव्यधारा में वही स्थान पृथ्वीराज रासो का है । आकार की विशालता, छंदों की विविधता, वस्तुओं की अनेकरूपता और एकतत्व की महत्ता सभी दृष्टियों से पृथ्वीराज रासो, दूसरे रासो-काव्यों की अपेक्षा-अधिक गरिमामय और महत्वपूर्ण है । महाकवि चंदबरदाई ने अपनी कवि-प्रतिभा का जो अपार सागर अपनी कृति में चित्रित किया है, अन्य रासोकार उसका दशांश भी नहीं कर पाये हैं । वस्तुतः रासो-काव्यधारा में पृथ्वीराज रासो प्रकाश स्तम्भ के समान है । परवर्ती सभी रासोकारों ने पृथ्वीराज रासो का अनुकरण किया है । यह अनुकरण भी पूर्णतः सफल नहीं हो पाया है । वीर और श्रृंगार का सुन्दर समन्वय करने के कारण ही रस की दृष्टि से यह काव्य 'मिश्रित' या 'समन्वित' परंपरा के अंतर्गत आता है । इसमें युद्धों और युद्धों में काम आने वाली सामग्रियों का जितना सजीव और सार्थक वर्णन हुआ है, उतना ही श्रृंगार और श्रैङ्गारिक सामग्रियों का भी हुआ है । इन्हीं सब दृष्टियों से प्रमाणिकता का मत-भेद होते हुए भी यह रासो परंपरा का महत्वपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ काव्य

है । प्रमाणिकता-अप्रमाणिकता के भेद-भाव से ऊपर ही इसके काव्यत्व का वास्तविक रसास्वादन किया जा सकता है । आज कुछ प्रक्षेपों को स्वीकार करने के साथ इसे प्रामाणिक स्वीकारा जाने लगा है ।

2.8. निष्कर्ष

हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में रासो काव्यों की सुदीर्घ व समृद्ध परंपरा रही है । यद्यपि इन काव्यों के संबंध में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है, तथापि उनकी कलागत विभिन्नता तथा विशेषताओं के द्वारा कुछ ऐसे अंश मिलते हैं, जिनके आधार पर काव्य के रचयिता एवं रचना-काल का अनुमान लगाया जा सकता है । प्रस्तुत इकाई में रासो काव्य परंपरा का विशद परिचय दिया गया है । साथ ही, रासो काव्य धारा में 'पृथ्वीराज रासो' के अद्‌भुत काव्य-कौशल पर प्रकाश डाला गया है और यह स्थापित किया गया है कि इस विशिष्ट काव्य-धारा में 'पृथ्वीराज रासो' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अद्वितीय है ।

2.9. बोध प्रश्न

1. रासो काव्य-परंपरा का परिचय दीजिए ।
2. 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए रासो काव्यों का परिचय दीजिए ।
3. नृत्य-गीत परक धारा के विभन्न रासो काव्यों पर एक लेख लिखिए ।
4. छन्द-वैविध्य परक धारा के विविध रासो काव्यों पर विचार कीजिए ।
5. रासो काव्य-परंपरा में पृथ्वीराज रासो का स्थान निर्धारित कीजिए ।
6. पृथ्वीराज रासो की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

NOTES

इकाई तीन : पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता तथा प्रामाणिकता

इकाई की रूपरेखा

3.0. उद्देश्य

3.1. प्रस्तावना

3.2. कथानक

- 3.2.1. पृथ्वीराज का वृत्त
- 3.2.2. शहाबुद्दीन गोरी का वृत्त
- 3.2.3. जयचन्द का वृत्त
- 3.2.4. कयमास का वृत्त
- 3.2.5. गोविन्दराज का वृत्त
- 3.2.6. डाहल के कर्ण का प्रसंग
- 3.2.7. भीम-चालुक्य का प्रसंग
- 3.2.8. सलष और जैत पमार का प्रसंग
- 3.2.9. सामंत एवं योद्धाओं के नाम

3.3. निष्कर्ष

3.4. रासो की प्रामाणिकता

- 3.4.1. रासो को अप्रामाणिक मानने के कारण
  - 3.4.1.1. घटना वैषम्य

3.4.1.2. काल वैषम्य

3.4.1.3. भाषा की कसौटी

3.4.1.4. निर्माण काल

3.4.2. प्रामाणिकता के पक्ष में

3.4.2.1. डॉ.श्यामसुन्दरदास का मत

3.4.2.2. डॉ.दशरथ शर्मा का मत

3.4.3. अन्य मत

3.4.4. समीक्षा

3.5. निष्कर्ष

3.6. बोध प्रश्न

3.0. उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता तथा प्रामाणिकता पर विचार किया जा रहा है, जिसके अध्ययन के उपरांत आप -

1. कवि चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' की कथावस्तु से अवगत होंगे ;
2. इस कथानक के अंतर्गत विभिन्न प्रसंगों से परिचित होंगे ;
3. रासो काव्य की प्रामाणिकता पर विचार कर पायेंगे ;
4. रासो की प्रामाणिकता के पक्ष में प्रचलित मतों की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
5. रासो को अप्रामाणिक मानने के कारणों को जान पायेंगे ;
6. पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता तथा प्रामाणिकता के संबंध में संपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे ।

3.1. प्रस्तावना

पृथ्वीराज रासो हिन्दी-साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना गया है, जिसके रचनाकार पृथ्वीराज के समकालीन कवि चन्दबरदाई हैं । यह एक बृहत् ग्रंथ है और अनेक समयों में (समय अर्थात् सर्ग) विभिजित किया गया है । इसमें वर्णित कई बातों से तथा प्रयुक्त भाषा से उसकी ऐतिहासिकता और कल्पना तत्व की जानकारी मिलती है । इस महाकाव्य में वर्णित घटना व काल की दृष्टि से कई आलोचकों में मत-भेद है, जो इस काव्य की प्रामाणिकता पर प्रश्न-चिह्न लगाता है । इस इकाई में इस विशाल काव्य की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता पर विचार किया जायेगा ।

3.2. कथानक

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है । यह एक ढाई हजार पृष्ठों का विशाल ग्रन्थ है । इसमें इतिहास प्रसिद्ध

हिन्दू-सम्राट दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान के जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । इसमें उनके युद्ध-कौशल आखेट-वर्णन, विवाह वर्णन आदि के अतिरिक्त गजनी के शहाबुद्दीन गोरी के साथ होने वाले युद्धों का वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ किया गया है ।

यह एक काव्य ग्रन्थ है । अतः तथ्यों के साथ इसमें कल्पना का संयोग होना स्वाभाविक है । यह एक प्राचीन, लगभग 900 वर्ष पुराना ग्रन्थ है । अतः इसमें प्रक्षिप्त अंशों का जुड़ जाना तो स्वाभाविक है । अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इसके कथानक में वर्णित विषयवस्तु में कितना अंश ऐतिहासिक है और कितना अंश कल्पना प्रसूत है ।

यह देखने के लिए इसमें इतिहास एवं कल्पना का संयोग किस प्रकार हुआ है, इसमें आने वाले व्यक्तियों के नाम तथा इसमें वर्णित घटनाओं पर गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिए । इसके लिए हम निम्नलिखित वृत्तों पर विचार करते हैं -

1. पृथ्वीराज का वृत्त
2. शहाबुद्दीन गोरी का वृत्त
3. जयचन्द का वृत्त
4. कयमास का वृत्त
5. गोविन्दराज का वृत्त
6. डाहल के कर्ण का प्रसंग
7. भीम-चालुक्य का प्रसंग
8. सलष और जैत पमार का प्रसंग
9. पृथ्वीराज और जयचन्द के पक्षों के योद्धाओं के नाम

अब हम उपर्युक्त वृत्तों को एक-एक करके लेते हैं ।

3.2.1. पृथ्वीराज का वृत्त

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज का शैशव अजमेर में व्यतीत हुआ था । उसके पिता का नाम सोमेश्वर था । वह बहिला

बन का निवासी था । उसने शहाबुद्दीन गोरी और बलख के शासक को परास्त किया ।

इसमें बहिला-बन वाली बात के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है । पृथ्वीराज द्वारा बलख के शासक के परास्त होने वाली बात इतिहास-पुष्ट नहीं है । शेष बातें इतिहास-सम्मत हैं ।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने मरुधरा को विजयी किया, मंडोवर को नष्ट किया, मरुदन्ड के राजा को दण्ड दिया, रणथंभौर को आग की लपटों में भस्म किया, कालिंजर को जल में डुबो दिया । इन घटनाओं की इतिहास द्वारा पुष्टि कठिन है, परंतु इतना अवश्य है कि पृथ्वीराज जैसे पराक्रमी एवं वीर राजा के लिए इस प्रकार के कार्य करना असम्भव नहीं है । यह भी हो सकता है कि काव्य के सौष्ठव में वृद्धि करने लिए ग्रंथकार ने उसके जीवन की घटनाओं को एक विशेष प्रकार से सूचीबद्ध कर दिया हो ।

रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने कालिंजर के चन्देल शासक परमर्दि पर विजय प्राप्त की थी । उनकी इस विजय गाथा की पुष्टि मदनपुर के शिलालेख से हो जाती है - उसमें इसका स्पष्ट उल्लेख है ।

सारांश यह है कि पृथ्वीराज का वृत्त अधिकांशतः इतिहास-सम्मत है ।

3.2.2. शहाबुद्दीन गोरी का वृत्त

'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्धों का जो वर्णन है, वह इतिहास पुष्ट है ।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के मध्य युद्ध कम से कम सात बार हुआ । एक स्थान पर गोरी कहता है -

''जिह हउं गहि छंडियउ बार सत हउं अप्पंउ कर ।''

इस कथन के अर्थ दो प्रकार से किए जा सकते हैं । यथा -

1. जिसने मुझे सात बार पकड़ा और छोड़ा और जिसे मैंने कर अर्पित किया ।

2. जिसने मुझे पकड़ कर छोड़ा और जिसे मैंने सात बार कर अर्पित किया ।

अर्थ किसी भी प्रकार किया जाए, प्रत्येक स्थिति में कथन की मूल भावना वही बनी रहती है । गोरी और पृथ्वीराज के मध्य सात बार युद्ध हुआ ।

रासो में इन दोनों के मध्य होने वाले युद्धों के स्थानों के नाम 'सरवर' और 'विश्वासर' दिए गए हैं ।

मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के बीच केवल दो ही युद्ध हुए थे । प्रथम युद्ध में गोरी पराजित हुआ था और द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ और मारा गया । इतिहासकारों ने एक ही युद्धस्थल का नाम लिया है । वह है तवरहिन्द या सरहिंद ।

उल्लेखनीय बात यह है कि रासो में भी केवल दो ही युद्धों का वर्णन मिलता है - सरवर का युद्ध तथा अंतिम युद्ध । अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के बीच केवल दो ही युद्ध हुए थे । युद्धस्थल सरवर (सरहिंद) ही रहा होगा । शेष युद्ध काल्पनिक है ।

पृथ्वीराज के अनुसार अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुए । शहाबुद्दीन उनको बन्दी बना कर गजनी ले गया । वहां उसने पृथ्वीराज की आंखें निकलवा लीं और उसे कैद में डाल दिया । कुछ समय बाद चन्दबरदाई गजनी पहुँचे । उसने अपने वाक्-चातुर्य द्वारा सुलतान गोरी को पृथ्वीराज के शब्द-भेदी बाण के चमत्कार को देखने के लिए राजी कर लिया । शाह के मुख से फरमान निकलते ही पृथ्वीराज ने बाण छोड़ा और बाण ने उसका

वध कर दिया । तदनंतर पृथ्वीराज और चन्द परस्पर एक दूसरे को कटार मार कर मृत्यु को प्राप्त हुए ।

इतिहासकारों ने पृथ्वीराज की मृत्यु का वर्णन अन्य ही प्रकार से किया है । इनके अनुसार उनके मध्य दो युद्ध हुए । सन् 1191 में तथा सन् 1192 में । प्रथम में शहाबुद्दीन गोरी पराजित हुआ ; द्वितीय में पृथ्वीराज पराजित हुए और मारे गये ।

मुसलमान इतिहासकारों में हसन निजामी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है । उनके अनुसार पृथ्वीराज अजमेर के शासक थे । दिल्ली के शासक का नाम गोविंदराव या खाँडेराव था, जो पृथ्वीराज की ओर से दोनों युद्धों में शहाबुद्दीन गोरी के विरुद्ध लड़ा था । हसन निजामी के अनुसार गोरी ने दूसरे युद्ध के पूर्व दूत द्वारा पृथ्वीराज के पास यह प्रस्ताव भेजा था कि वह इस्लाम धर्म को स्वीकार कर ले । पृथ्वीराज ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । इसी के परिणामस्वरूप शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया । पृथ्वीराज की पराजय हुई और वह युद्ध स्थल से भाग खड़ा हुआ । वह सरस्वती नदी के तट पर पकड़ा गया और मार डाला गया ।

इस प्रकार चित्ररेखा के प्रेमी पठान सरदार को पृथ्वीराज द्वारा शरण देने की बात काल्पनिक ठहरती है । यह भी बात गलत ठहरती है कि पृथ्वीराज, अजमेर व दिल्ली का संयुक्त शासक था । जब तक खोजों द्वारा इस तथ्य पर निर्णयात्मक प्रकाश न पड़ जाए, तब तक इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता है ।

पृथ्वीराज की मृत्यु का विवरण पक्षपातपूर्ण प्रतीत होता है । यह प्रस्वाभाविक है कि पृथ्वीराज जैसा वीर राजपूत-युद्ध के मैदान को छोड़कर भाग खड़ा हो । पृथ्वीराज की हीनता दिखाने के लिए ही मुसलमान इतिहासकारों ने यदि उसके द्वारा युद्ध-स्थल को छोड़कर भाग खड़े होने की कल्पना कर ली हो, तो यह असंभव

नहीं है । पृथ्वीराज को पकड़कर आँखें निकलवा लेना तथा उसको कारागार में डालकर अपमानित करना आदि ऐसी बातें हैं, जो मुसलमान आक्रमणकारियों के चरित्र के अधिक अनुरूप हैं । पीठ दिखाने वाले शत्रु पर प्रहार न करने की मर्यादा का पालन करते हुए पृथ्वीराज ने यदि भागते हुए गोरी को प्राण दान दे दिया हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । शौर्य का यह दंभपूर्ण प्रदर्शन अनेक हिन्दू राजाओं के पतन का कारण बना है । अतः गजनी में पृथ्वीराज द्वारा शब्द वेधी बाण का चमत्कार, उसके बाण द्वारा गोरी की मृत्यु तथा पृथ्वीराज एवं चन्द की एक दूसरे के हाथों मृत्यु आदि घटनाएँ विवादास्पद ही मानी जानी चाहिए ।

3.2.3. जयचन्द का वृत्त

'रासो' में जयचंद को विजयपाल का पुत्र कहा गया है । इतिहास में उसकी विजयचंद का पुत्र माना गया है । संवत् 1224 के कसौली के दानपत्र से स्पष्ट है कि जयचंद अपने पिता विजयचंद के साथ दिग्विजय के लिए गया था । अतः स्पष्ट है कि 'रासो' में दिया गया जयचंद के पिता का नाम प्रक्षिप्त है ।

'रासो' में जयचंद की अनेक विजयों का वर्णन है । उसने अनेक राजाओं को परास्त किया यहाँ तक उसने खुरासान के अमीर और गजनी के शहनशाह के सेवक निसुरतखां को बंदी बनाया तथा वह लंका जाकर विभीषण से भिड़ गया । अनेक राजाओं के ऊपर जयचंद की विजय के संबंध में इतिहास मौन है । लंका में जाकर विभीषण से भिड़ जाने वाली बात तो शतप्रतिशत कवि-कल्पना है । इस प्रकार जयचंद के प्रसंग में वर्णित अनेक नाम कवि-वर्णन प्रथा के अनुसार काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं ।

पृथ्वीराज रासो के अनुसार जयचंद ने राजसूय यज्ञ किया और संयोगिता स्वयंवर उनके संघर्ष का कारण बना । जयचंद और पृथ्वीराज का समकालीन होना इतिहास पुष्ट है, परंतु जयचंद के

राजसूय यज्ञ पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह तथा पृथ्वीराज जयचंद संघर्ष के संबंध में इतिहास मौन है । इन घटनाओं को इतिहास विरुद्ध बताने वालों में महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा प्रमुख हैं । इस संबंध में उनकी मान्यता के आधार तीन हैं -

1. जयचंद के दानपत्र, 2. संवत् 1460 में जयचंद सूरि द्वारा विरचित 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 3. इन्हीं सूरि प्रणीत 'रंभा मंजरी' नाटिका है । इनमें जयचंद के राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं मिलता है ।

इस संबंध में यही कहना है कि उक्त दोनों ग्रंथ इतिहास-ग्रंथ न होकर काव्य ग्रंथ ही हैं और फिर 'हम्मीर महाकाव्य' स्वयं इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है । अतः इन ग्रंथों के आधार पर कोई निर्णय करना तर्क सम्मत नहीं कहा जायेगा ।

एक विशेष बात है । 'हम्मीर महाकाव्य' में पृथ्वीराज और परमर्दि के युद्ध का भी उल्लेख नहीं है । यह युद्ध अपने युग की एक बहुत ही प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना थी । इसका उल्लेख वि. संवत् 1239 के मदनपुर के शिलालेख में मिलता है । इसी प्रकार 'रंभा मंजरी' नाटिका में जयचंद के पिता का नाम 'मल्लदेव' लिखा गया है । यह बात भी तथ्य के विरुद्ध है । अतः पुष्ट प्रमाणों के अभाव में जयचंद एवं पृथ्वीराज के वृत्त के विषय में निर्णयात्मक बात कहना कठिन ही है । यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि डॉ.दशरथ शर्मा ने पृथ्वीराज और जयचंद की लड़की के विवाह को एक ऐतिहासिक घटना बतलाया है ।

मीरजाफर की भांति जयचंद की भी गणना देश द्रोहियों की पंक्ति में की जाती है । अतः जयचंद एवं पृथ्वीराज के संघर्ष के प्रसंग को आसानी से इतिहास विरुद्ध नहीं कहा जा सकता ।

3.2.4. कयमास का वृत्त

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कयमास पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य था । वह पृथ्वीराज की एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था । एक दिन पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में कयमास उस दासी के कक्ष में चला गया । पृथ्वीराज ने इस सूचना को पाकर दोनों का वध करा दिया । कयमास का उल्लेख अन्य दो ग्रंथों 'पृथ्वीराज विजय' तथा 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' के 'पृथ्वीराज प्रबंध' में मिलता है ।

'पृथ्वीराज विजय' में मंत्री कदम्बास का उल्लेख है । कहा जाता है कि इसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था । इसके आगे का वर्णन अप्राप्त है क्योंकि 'पृथ्वीराज विजय' की खण्डित प्रति ही प्राप्त है ।

'पुरातन प्रबंध संग्रह' के 'पृथ्वीराज प्रबंध' में पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य का नाम 'कयमास' ही है, परंतु उसमें उसके वध का नहीं बल्कि निष्कासन का वर्णन है और वह भी सर्वथा भिन्न कारण लेकर लिखा गया है कि वह शहाबुद्दीन गोरी से मिल गया और पृथ्वीराज की पराजय का कारण बना । सारांश यह है कि कयमास का पृथ्वीराज का अमात्य होना इतिहास सम्मत तथ्य है । पृथ्वीराज द्वारा उसके वध की घटना कवि कल्पना प्रसूत प्रतीत होती है ।

3.2.5. गोविन्दराज का वृत्त

पृथ्वीराज रासो के अनुसार गोविन्दराज पृथ्वीराज के मुख्य सामंतों में से एक था । वह पृथ्वीराज के जयचंद के यहाँ राजसूय यज्ञ के अवसर पर गया था और वहीं युद्ध में मारा गया था । मिन हाजुस्सिराज की तिवकात ए आसिरी, के अनुसार गोविंद राय दिल्ली का था और वह शहाबुद्दीन पृथ्वीराज संघर्ष में मारा गया । सारांश यह है कि गोविंदराय एक ऐतिहासिक व्यक्ति था और वह पृथ्वीराज का एक महत्वपूर्ण सामंत था ।

3.2.6. डाहल के कर्ण का प्रसंग

पृथ्वीराज रासो के अनुसार डाहल का शासक कर्ण जयचंद द्वारा दो बार बंदी बनाया गया था -

''करण डाहल्ल दू बार बांध्यउ ।''

यह वर्णन सर्वथा काल्पनिक प्रतीत होता है, क्योंकि कर्ण का समय संवत् 1097-1127 था और वह जयचंद का समकालीन नहीं ठहरता है; हो सकता है डाहल के कर्ण से रासोकार का आशय जयचंद के समकालीन कलचुरि शासक जयसिंह अथवा विजयसिंह से हो ।

3.2.7. भीम-चालुक्य का प्रसंग

रासो में लिखा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम चालुक्य की शक्ति को नष्ट किया । कयमास भीम को बंदी बनाने लगा । पृथ्वीराज ने भीम से जालौर की रक्षा की थी ।

भीम और पृथ्वीराज की समकालीनता इतिहास-पुष्ट है । जालौर के पीछे दोनों का युद्ध एक ऐतिहासिक घटना है । अतः भीम चालुक्य का वृत्त सर्वथा इतिहास-सम्मत है ।

3.2.8. सलष और जैत पमार का प्रसंग

पृथ्वीराज रासो के अनुसार सलष आबू का राजा था । इसका पुत्र जैत पमार था जो पिता की मृत्यु के बाद आबू नरेश बना । सलष जयचंद पृथ्वीराज युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा और मारा गया । जैत पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ मारा गया ।

3.2.9. सामंत एवं योद्धाओं के नाम

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज और जयचंद के पक्षों के अनेक योद्धाओं के नाम आए हैं । जैसे कान्ह, नरसिंह, दाहिमा, चंद

पुण्डीर, जाल्ह, बलीराम यादव, लषन बघेल इत्यादि । शहाबुद्दीन पृथ्वीराज युद्ध के संदर्भ में शहाबुद्दीन के तीन योद्धाओं के नाम आए हैं । खुरासान खां, तातर खां तथा रुस्तमखां । इन नामों के विषय में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता है । ये समस्त नाम कवि कल्पित ही लगते हैं ।

3.3. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवैचना द्वारा स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' के अनेक प्रसंग, व्यक्ति एवं उसकी अनेक घटनाएं कवि कल्पना प्रसूत हैं, परंतु साथ ही उसके ऐतिहासिक तथ्यों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है । 'पृथ्वीराज रासो' इतिहास ग्रंथ न होकर एक काव्य ग्रंथ है । यही कहा जाता है कि कवि चंद ने उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के साथ कल्पना के संयोग द्वारा बड़े ही मनोहारी कथानक की सृष्टि की है ।

3.4. रासो की प्रामाणिकता

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी-साहित्य का प्रथम काव्य ग्रंथ माना जाता है । इसके रचयिता पृथ्वीराज के समकालीन कवि चन्दबरदाई थे । यह एक 2500 पृष्ठों का बृहत्काय ग्रन्थ है, जो 69 सर्गों में विभक्त है । इसमें कहीं-कहीं ऐसी बातों का वर्णन है जो इतिहास की दृष्टि से ठीक नहीं मालूम पड़ती । कई स्थलों पर इसकी भाषा में भी अंतर दिखाई देता है । ऐसे स्थलों पर वह हिन्दी के प्राचीन रूप का परित्याग करती हुई दिखाई देती है ।

इन कारणों वश विद्वान एवं आलोचक वृंद उसकी प्रामाणिकता में संदेह करने लगे हैं । कुछ लोगों के मतानुसार उसकी रचना चंद द्वारा 12वीं शताब्दी में ही हुई थी । कुछ के मतानुसार उसमें अधिकांश भाग प्रक्षिप्त हैं, कुछ महानुभाव उसको 16वीं शताब्दी की रचना मानते हैं आदि । इस प्रकार पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता विद्वानों के लिए विवाद का विषय बन गई है ।

इस ग्रंथ की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता संबंधी विचारों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है ।

क. कुछ विद्वान पृथ्वीराज रासो को सर्वथा प्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं । इनके मतानुसार चन्दबरदाई इस ग्रंथ का रचयिता था, वह पृथ्वीराज चौहान का सखा, सामंत एवं समकालीन था तथा इसमें वर्णित प्रत्येक घटना सत्य है । इस वर्ग के उल्लेखनीय नाम हैं कर्नल टाड, मिश्रबन्धु, डॉ.श्यामसुंदर दास तथा पं.मोहन लाल विष्णुलाल पांडया ।

ख. कुछ लोग 'पृथ्वीराज रासो' को सर्वथा अप्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं । ये लोग न तो चन्दबरदाई को पृथ्वीराज के दरबार का कवि मानते हैं और न रासो को पृथ्वीराज के समय की रचना मानते हैं । इन लोगों का कहना है कि चंद नाम का कोई कवि हुआ ही नहीं,. न उसने रासो की रचना ही की, रासो में आई हुई तिथियाँ गलत हैं क्योंकि इसमें वर्णित घटनाएँ एवं तिथियाँ इतिहास विरुद्ध ठहरती हैं । इस वर्ग के उल्लेखनीय नाम है पं.रामचन्द्र शुक्ल, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, कविराज श्यामलदाय, कविराज मुरारिदीन, डॉ.बूलर, मुंशी देवीप्रसाद तथा डॉ.रामकुमार वर्मा ।

ग. कुछ लोगों का कथन है कि चन्द नाम का कवि पृथ्वीराज के दरबार में था और उसने रासो की रचना भी की थी, किंतु मूल रासो आज उपलब्ध नहीं है; आज के रासो में प्रक्षिप्त अंश बहुत हैं । आज उसका परिवर्धित, परिवर्तित एवं विकृत रूप ही उपलब्ध है । प्रक्षिप्त अंशों के बाहुल्य के कारण इस वर्ग के विद्वान भी उसे प्रामाणिक ग्रंथ नहीं मानते हैं । इनमें मुख्य हैं डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी, अगरचंद नाहटा, डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ.दशरथ शर्मा, मुनि जिन विजय तथा कविराज मोहनसिंह ।

घ. कुछ लोगों का कहना है कि चंद नाम का व्यक्ति पृथ्वीराज का समकालीन अवश्य था किंतु 'पृथ्वीराज रासो' उसी चंद नामक

कवि की रचना नहीं है, क्योंकि प्रस्तुत रासो में अनेक भूलें इतनी भयंकर हैं कि उन्हें चन्द कृत मानना सर्वथा असम्भव है । चन्दबरदाई तो पृथ्वीराज के इतने अधिक निकट था कि उसके द्वारा इस प्रकार भूलें हो जाना समझ में नहीं आता है । यह पक्ष जैन ग्रंथ माला में प्राप्त पदों को उसकी फुटकल रचना मानता है । नरोत्तम स्वामी का यही मत है ।

अब तक 'पृथ्वीराज रासो' की सात प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं । इनमें किसको प्रामाणिक माना जाय तथा किसको अप्रामाणिक माना जाए यह निर्णय करना अत्यंत दुस्तर कार्य है ।

इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज विजय' नामक एक अन्य खण्डित काव्य प्राप्त हुआ है । वह खण्डित प्रति ही प्रस्तुतः 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक बताने का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत है क्योंकि इस प्रति के वर्णन इतिहास के साथ मेल खाते हैं ।

रासो की अप्रामाणिकता की बात सबसे पहले कविराज श्यामलदीन ने उठाई थी । इसके विरोध में विष्णु लाल पाण्डया सामने आए और उन्होंने रासो को सर्वथा प्रामाणिक बताने का प्रयत्न किया । आगे चलकर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसको एक जाली ग्रंथ घोषित कर दिया । कुछ वर्ष पूर्व मुनि जिन विजय को 'पुरातन प्रबंध संग्रह' नाम की एक पुस्तक मिली । उसके आधार पर मुनि जी ने अनुमान लगाया कि 'रासो' में प्रक्षिप्त अंश पर्याप्त हैं, परंतु उसे सर्वथा जाली ग्रंथ नहीं कहा जा सकता ।

रासो के जो लघु संस्करण प्राप्त हुए, उनके आधार पर कुछ विद्वानों ने 'रासो' को प्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध करने का प्रयत्न किया । इनमें पं.मथुराप्रसाद दीक्षित और दशरथ शर्मा मुख्य हैं ।

डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस संबंध में उपलब्ध प्रायः समस्त विद्वानों के मतों की विश्लेषणात्मक समीक्षा करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला है कि 'पृथ्वीराज रासो' एक अप्रामाणिक ग्रंथ है :

"इस समय तक रासो को प्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध करने की सामग्री बहुत ही कम है । आज तक की सामग्री के सहारे रासो को प्रामाणिक ग्रंथ कहना इतिहास और साहित्य के आदर्शों की उपेक्षा करना है ।"

मुख्यतया दो वर्ग

रासो की प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों के सामान्यतः दो वर्ग हैं । एक वर्ग उसको प्रामाणिक मानने के पक्ष में है और दूसरा वर्ग उसकी प्रामाणिकता में संदेह करता है । प्रथम वर्ग के प्रमुख विद्वान हैं डॉ.श्याम सुन्दरदास, मिश्र बंधु तथा विष्णु लाल पाण्डया । द्वितीय वर्ग में प्रमुख हैं श्यामलदीन, मुरारिदीन, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं.रामचन्द्र शुक्ल तथा डॉ.रामकुमार वर्मा ।

3.4.1. रासो को अप्रामाणिक मानने के कारण

रासो को अप्रामाणिक मानने के तीन कारण हैं । घटना वैषम्य, काल वैषम्य तथा भाषा वैषम्य तथा इसमें वर्णित घटनाएं इतिहास की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती हैं तथा इसमें दी हुई तिथियाँ गणना करने पर अशुद्ध सिद्ध होती हैं । भाषा भी अव्यवस्थित सिद्ध होती है तथा उसमें अरबी शब्दों का बाहुल्य दिखाई देता है । रासो की उक्त विषमताओं के संबंध में विद्वानों ने बड़े ही सबल निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं ।

"इसमें कपोल कल्पित और मनमानी कथाएं इतनी अधिक हैं कि वे अविश्वासनीय हैं और उनका इतिहास से कोई संबंध नहीं है ।"

- (डॉ.रामकुमार वर्मा)

"भाषा की कसैटी पर यदि इस ग्रंथ को कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है । उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है ।"

- (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

''भाषा की दृष्टि से रासो के व्याकरण का ढांचा प्रधानतया 16वीं शताब्दी की बज्रभाषा है । शब्दों के रूपों में 'अपभ्रंशाभास' अवश्य बहुत पाया जाता है । इसी कारण रासो की भाषा के संबंध में अनेक भ्रम फैल गये हैं । खड़ी बोली के रूप भी साधारणतया बहुत कम मिलते हैं । रासो के कुछ उदाहरण नीचे दे रहा हूँ जो यदि यह न बताया जाय कि रासो के हैं तो उन्हें 16वीं शताब्दी के किसी साधारण कवि का माना जा सकता है ।''

- (डॉ.धीरेन्द्र वर्मा)

3.4.1.1. घटना वैषम्य

शिलालेख, ताम्रपत्र तथा 'पृथ्वीराज विजय' नामक ग्रंथ के आधार पर इसमें इतिहास संबंधी अनेक भ्रांतियाँ दिखाई देती हैं । आरंभ में जब 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल' द्वारा पृथ्वीराज रासो का प्रकाशन हो रहा था, उन्हीं दिनों डॉ.बूलर को काश्मीर में जयानक कवि विरचित 'पृथ्वीराज विजय' नामक ग्रंथ की एक अधूरी प्रति मिली । उसका अध्ययन करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इस ग्रंथ की घटनाएँ 'पृथ्वीराज रासो' की घटनाओं की अपेक्षा इतिहास की कसौटी पर अधिक खरी उतरती हैं । अतः उन्होंने रासो का प्रकाशन रुकवा दिया । इस उक्त घटना के साथ साहित्य-जगत में एक प्रकार की हलचल प्रारंभ हो गई और रासो पर ऐतिहासिक दृष्टि से खोज आरंभ हो गई । इससे पूर्व कर्नल टाड ने रासो को ऐतिहासिक दृष्टि से शुद्ध मानकर राजस्थान का इतिहास लिख डाला था ।

रासो में दिये गये अधिकांश नाम और घटनाएँ इतिहास-सम्मत प्रमाणित नहीं होती । रासो में परमार, चालुक्य और चौहान क्षत्रिय अग्निवंशी माने गये हैं, परंतु प्राचीन ग्रंथों एवं शिलालेखों के आधार पर वे सूर्यवंशी प्रमाणित होते हैं । साथ ही चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता का नाम, माता का वंश, पुत्र का नाम आदि भी ऐतिहासिक शिलालेखों एवं 'पृथ्वीराज

विजय' से भिन्न और अशुद्ध हैं । इस संबंध में गौरीशंकर हीराचंद ओझा का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है :

"विक्रमी संवत् 1460 में हम्मीर काव्य बना ..... । उसमें चौहानों का विस्तृत इतिहास है, परंतु उसमें पृथ्वीराज रासो के मतानुसार चौहानों को अग्निवंशी नहीं लिखा और न उसकी वंशावली को आधार ही माना गया है ।"

मुंशी देवीप्रसाद के शब्दों में "पृथ्वीराज के उत्कर्ष के लिए रासोकार ने बहुत से राजाओं के कल्पित नाम दिये हैं ।"

'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज की माता कमला को दिल्ली-नरेश अनंगपाल की दुहिता बताया है, तथा शहाबुद्दीन द्वारा समरसिंह के वध और पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर के वध की चर्चा की गयी है । परंतु इतिहास की खोजों के अनुसार न तो पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था और न अनंगपाल उस समय दिल्ली राजा ही था । पृथ्वीराज रासो में जयचंद को अनंगपाल का दौहित्र तथा राठौर वंशीय बताया गया है । ये दोनों बातें भी गलत हैं । शिला लेखों में जयचंद को गहरवार क्षत्रिय बताया गया है । इसी प्रकार रासो में वर्णित अन्य घटनाएँ भी भ्रमपूर्ण हैं । पृथ्वीराज और जयचंद की शत्रुता एवं संयोगिता-स्वयंवर की घटना भी ओझा जी कल्पित मानते हैं । पृथ्वीराज के उपरांत समरसिंह 109 वर्ष जीवित रहे थे । अतः मेवाड़-नरेश समरसिंह के साथ पृथ्वीराज की बहिन पृथा की बात भी गलत है । पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीम का वध होनेवाली बात भी गलत है, क्योंकि राजा भीम के एक दानपत्र द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि राजा भीम पृथ्वीराज की मृत्यु के उपरांत 50 वर्ष तक जीवित रहा था । इसी प्रकार शहाबुद्दीन द्वारा समरसिंह का वध और पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी अनैतिहासिक है ।

3.4.1.2. काल वैषम्य

रासो में दी हुई प्रायः सभी तिथियां अशुद्ध हैं । कर्नल टाड

ने गणना करके यह निष्कर्ष निकाला है कि रासो में दिये गये सम्वत् और ऐतिहासिक साधनों द्वारा प्राप्त संवत् में 100 वर्ष का अंतर है । रासो के अनुसार पृथ्वीराज के जन्म एवं निधन संवत् क्रमशः 1115 तथा 1158 हैं, जबकि इतिहास के अनुसार ये क्रमशः संवत् 1218 और 1258 ठहरते हैं । रासो के अनुसार शहाबुद्दीन गोरी संवत् 1139 में पृथ्वीराज द्वारा मारा गया था परंतु इतिहास के अनुसार संवत् 1263 में गक्खरो द्वारा उसका वध किया गया था । इसी प्रकार उसकी अन्य अनेक तिथियाँ इतिहास की कसौटी पर अशुद्ध ठहरती हैं । जैसे आबू पर भीम चालुक्य का आक्रमण, शहाबुद्दीन के साथ पुन्डीर का युद्ध आदि । इसके अतिरिक्त इसमें दी हुई घटनाओं-पृथ्वीराज का दिल्ली की गोद जाना, मेवाती-मुगल युद्ध, संयोगिता स्वयंवर आदि का-संवत् 1460 के आसपास रचित हम्मीर काव्य में कहीं भी उल्लेख नहीं है । इन ऐतिहासिक भूलों के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चंदबरदाई यदि पृथ्वीराज का समकालीन होता तो ये भूलें कदापि नहीं हो सकती थीं ।

3.4.1.3. भाषा की कसौटी

घटना-वैषम्य और काल-वैषम्य के अतिरिक्त इसको अप्रामाणिक मानने वाले दो कारण भी उपस्थित करते हैं । प्रथम कारण रासो में अरबी-फारसी के बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ जो चन्द के समय में किसी प्रकार भी संभव नहीं है । अतः रासो पृथ्वीराज के समय की रचना न होकर सोलहवीं शताब्दी की रचना है । दूसरा कारण यह है कि इसमें अनुस्वारांत शब्दों की भरमार है । प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दों की रूपावली का कोई विचार नहीं है और नये और पुराने ढंग की विभक्तियां बुरी तरह मिली हुई हैं ।

3.4.1.4. निर्माण काल

'पृथ्वीराज रासो' के निर्माण-काल के संबंध में गौरी शंकर

हीराचंद ओझा का मत है कि संवत् 1469 रचित हम्मीर-काव्य में रासो का आधार ग्रहण नहीं किया गया । अतः रासो की रचना 'हम्मीर-काव्य' के बाद ही हुई होगी । मुगल-मेवाती युद्ध के वर्णन से भी वह 1455 और 1587 के बीच का ठहरता है । अतः रासो का निर्माण काल संवत् 1600 के आसपास ही है ।

बाबू रामनारायण दूगण के पास जो रासो की प्रति है, उसके अनुसार चंद के छन्द जगह-जगह बिखरे हुए थे और उनका संकलन महाराणा अमरसिंह ने कराया था । इस कथन की पुष्टि महाराणा रामसिंह द्वारा निर्मित नौ चौकी बांध के शिलालेख से होती है । इस शिलालेख का समय संवत् 173 है ।

पं.हरप्रसाद शास्त्री को रासो की एक प्रति चंद के वंशधर नानूराम के पास से प्राप्त हुई है । इसके अनुसार रचना-काल संवत् 1455 होना चाहिए ।

मोतीलाल मेनारिया का मत है कि 18 वीं शताब्दी से पूर्व के किसी भाषा ग्रंथ में 'रासो' का उल्लेख नहीं है । उसका उल्लेख राजसिंह की 'राज-प्रशस्ति' में मिलता है, जिसका लिखना संवत् 1788 में आरंभ हुआ था । अतः रासो का निर्माण काल इसी के लगभग माना जाना चाहिए ।

3.4.2. प्रामाणिकता के पक्ष में

रासो को प्रामाणिक मानने वालों में डॉ.श्याम सुन्दरदास और डॉ.दशरथ शर्मा प्रमुख हैं । इन दोनों महानुभावों ने 'रासो' के ऊपर पर्याप्त परिश्रम किया है ।

3.4.2.1. डॉ.श्यामसुन्दरदास का मत

आपने मुनि जिन विजय द्वारा प्राप्त चार रासो विषयक छन्दों को प्रामाणिक माना है । उनके विचार से ग्रंथ में प्रक्षिप्त अंशों का होना, क्षेपकों का होना सर्वथा सम्भव है, परंतु ग्रंथ जाली नहीं है ।

रासो के विषय में उनका मत है कि "पृथ्वीराज रासो समस्त वीरगाथाकाल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना है । उस काल की जितनी स्पष्ट झलक इसमें पाई जाती हैं उतनी अन्य किसी ग्रंथ में नहीं ।"

इतिहास संबंधी भ्रांतियों के बारे में उनके तर्क हैं कि :

1. अन्य व्यक्तियों की भाँति चंद ने भी अपने आश्रयदाता स्वामी के प्रताप का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है ।
2. रासो के क्षेपक ही भ्रांतियों के कारण हैं । ऐसा अन्य कई काव्यों में भी देखा जाता है ।
3. रासो की प्रामाणिकता के बारे में 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने जो पट्टे और परवाने प्रकाशित किए थे, हम उनको झूठा नहीं मान सकते ।
4. रहा अरबी-फरसी के शब्दों का प्रश्न । उनके विचार में शहाबुद्दीन गोरी से लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले महमूद गजनवी भारत में लूटमार करने आ चुका था । महमूद गजनवी से भी 300 वर्ष पूर्व सिंध और मुल्तान पर मुसलमान अधिकार कर चुके थे । पंजाब भी मुसलमानी-संस्कृति से प्रभावित था । "चन्द लाहौर का निवासी था । अतः बाल्यकाल से ही अरबी-फारसी के शब्द उसके मस्तिष्क में प्रवेश करने लगे थे । इस कारण चंद की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का होना स्वाभाविक है ।"

3.4.2.2. डॉ.दशरथ शर्मा का मत

आप इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि रासो का मूल रूप अल्पकाय था, अतः यह प्रामाणिक है । रासो को प्रामाणिक प्रमाणित करने के लिए उनके तर्क इस प्रकार हैं :

1. मूल रासो न तो जाली ग्रंथ है और न उसकी रचना संवत् 1600 के आसपास हुई थी । इधर मिली हुई रासो की लघुतम प्रतियों के आधार पर घटना वैषम्य एवं भाषा संबंधी शंका का

समाधान हो जाता है । इन प्रतियों में इतिहास विषयक त्रुटिपूर्ण घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है ।

2. राजपूत-कुलों के आबू के अग्निकुण्ड से उत्पत्ति का उल्लेख भी इस प्रति में नहीं है । उसमें केवल इतना लिखा है कि ब्रह्मा के यज्ञ से वीर चौहान मानिकराय उत्पन्न हुआ । सुजान चरित्र, हम्मीर-काव्य और पुष्कर तीर्थ में भी यह कथा इसी प्रकार है ।

3. ओझा जी के अनुसार रासो की अशुद्ध वंशावली का यह विस्तार बीकानेर की लघुतम प्रति में नहीं है । ''पृथ्वीराज विजय'' में और इस प्रति की वंशावली में कुछ ही नामों का अंतर है ।

4. अनंगपाल और पृथ्वीराज के संबंध की अशुद्धि इस प्रति में भी है ।

5. संयोगिता-स्वयंवर का वर्णन सभी प्रतियों में विस्तारपूर्वक है । लघुतम प्रति में केवल इच्छिनी के विवाह का ही वर्णन है ।

6. पृथा का विवाह तथा शहाबुद्दीन-सांभरसिंह युद्ध और भीम और सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज और सोमेश्वर के युद्ध का इस प्रति में कहीं भी उल्लेख नहीं है । इसमें पृथ्वीराज और पद्मावती के विवाह की कथा भी नहीं है । लघुतम प्रति में कैमास-वध का वर्णन है । 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार वह पृथ्वी का प्रधान मंत्री था ।

3.4.3. अन्य मत

ऐतिहासिक भ्रांतियों के संबंध में मिश्र-बंधुओं का कहना है कि पृथ्वीराज रासो ऐतिहासिक ग्रंथ न होकर काव्य-ग्रंथ है । अतः कवि ने इस में अपनी कल्पना का भी पूर्ण समावेश किया है । चंद का उद्देश्य था, अपने आश्रयदाता के शौर्य का वर्णन करना और उसके लिए उसने कल्पना का आधार लिया है । मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या इसकी तिथियों की प्रामाणिकता के विषय में कहते हैं कि राजा महानन्द के वंश के 90 वर्ष के शासनकाल को क्षत्रिय शासनकाल नहीं गिनते, अतः रासो में 90 वर्ष घटाकर ही संवत् लिखा गया है ।

कुछ समर्थकों का यह भी कहना है कि यह बताना तो कठिन है कि रासो का मूल रूप कैसा था । परंतु यह कहना सर्वथा असंगत है कि इसे चंद ने नहीं लिखा बल्कि किसी अन्य परवर्ती कवि ने लिखकर इसे चंद के नाम से प्रसिद्ध कर दिया । कारण स्पष्ट है । इतनी सुंदर रचना को लिखकर कौन चाहेगा कि वह किसी अन्य व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हो और यदि सचमुच ऐसा ही हुआ है, तो इसका यह अर्थ है कि चंद बहुत ही प्रसिद्ध कवि था ।

3.4.4. समीक्षा

अब तक रासो के चार रूपांतर प्राप्त हुए हैं । सर्वप्रथम मुनि जिन विजय ने इस बात पर जोर दिया कि रासो का मूल अल्पकाय अवश्य था और उसकी भाषा अपभ्रंश थी क्योंकि 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में रासो के चार ऐसे छन्द मिलते हैं, जो रासो की लघुतम प्रतियों में भी हैं । जिस प्रति में से ये छन्द उद्धृत किये गये हैं, वह 15वीं शताब्दी की है । भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों तथा नवीन एवं प्राचीन की मिलावट के उत्तर में विद्वानों का कहना है कि चंद लाहौर के निवासी थे । अतः उनकी भाषा में अरबी फारसी के शब्दों का होना सर्वथा तर्क संगत है । भाषा में कहीं प्रचीन भाषा और कहीं 16 वीं शताब्दी की भाषा होने का कारण यही है कि उसमें प्रक्षिप्त अंश काफी है ।

रासो को प्रामाणिक मानने वाले विद्वान रासो में प्रक्षिप्त अंश का होना तो स्वीकार करते हैं, किंतु उसे सर्वथा अप्रामाणिक अथवा जाली ग्रंथ नहीं मानते हैं । अधिकांश विद्वान चंद का होना तथा उसका पृथ्वीराज का समकालीन होना भी मानते हैं, किंतु यह नहीं मानते कि उसी ने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की थी । ओझा जी तो चंद को पृथ्वीराज का समकालीन होना भी नहीं मानते । मिश्र-बंधु और श्यामसुन्दरदास 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित पट्टों और परवानों को प्रामाणिक मानते हैं, परंतु ओझा जी इन्हें जाली बताते हैं । पांड्या जी अनंद संवत् की कल्पना

करते हुए कहते हैं कि रासो की घटनाओं में 90 वर्ष जोड़ देने से संवत् ठीक हो जाते हैं, परंतु वस्तुस्थिति यह है कि ऐसा करने पर भी तिथियां इतिहास के साथ मेल नहीं खाती हैं । डॉ.श्यामसुंदरदास का कहना है कि चंद पृथ्वीराज का दरबारी कवि था । कालांतर में रासो के वर्ण्य विषय एवं उसकी भाषा में परिवर्तन हो गया और उसमें प्रक्षिप्त अंश भी जुड़ गये । पहले आचार्य शुक्ल श्यामसुंदरदास जी के उक्त मत से सहमत थे, परंतु बाद में उन्होंने अपनी राय बदल दी । उन्होंने लिखा है कि इस संबंध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह ग्रंथ पूरा जाली है । यह हो सकता है कि इसमें इधर-उधर चंद के कुछ पद्य भी बिखरे हों, परंतु उनका पता लगाना असंभव है । यह यदि किसी समसामयिक कवि का रचा होता तो इसमें कुछ थोड़े अंश ही पीछे से मिले होते और कुछ घटनाएँ और कुछ संवत् तो ठीक होते ।

डॉ.दशरथ शर्मा के तर्कों के उपरांत भी ये दो बातें प्रमाणित नहीं हो सकीं । पृथ्वीराज का अनंगपाल तोमर का नाती होने का और इंच्छिनी के विवाह का कोई प्रमाण नहीं है । इसके अतिरिक्त संयोगिता स्वयंवर और चौहानों की उत्पत्ति भी संदेहास्पद है । इतनी खोजों और इतने विवाद के पश्चात् भी यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि 'पृथ्वीराज रासो' एक प्रामाणिक ग्रंथ है अथवा अप्रामाणिक रचना है । इस संबंध में डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है :

"इस निरर्थक मंथन से जो दुस्तर धन-राशि तैयार हुई है, उसे पार करके ग्रंथ के साहित्यिक रस तक पहुँचना हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी के लिए असंभव सा व्यापार हो गया है ।"

3.5. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ये निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :

1. रासो की प्रामाणिकता के विरोध में इतने तर्क होते हुए भी

समाज में प्रचलित इतनी महत्वपूर्ण बात को अस्वीकार नहीं करना चाहते ।

2. चंदबरदाई पृथ्वीराज का समकालीन और उसका दरबारी कवि था ।
3. चंद एक प्रसिद्ध कवि था और उसने 'पृथ्वीराज रासो' का कुछ अंश अवश्य लिखा था ।
4. चंद के पुत्र जल्हण ने रासो को पूरा किया था । बहुत संभव है कि जल्हण के बाद ही किसी अन्य कवि ने उसको पूरा किया हो ।
5. अपने आश्रयदाता के सम्मान की रक्षा के लिए ही सम्भवतः कतिपय घटनाओं में हेर-फेर कर दिया गया है ।
6. रासो में प्रक्षिप्त अंश अवश्य हैं ।
7. रासो की भाषा और उसके छन्द बाद में बहुत कुछ विकृत हुए हैं ।

'पृथ्वीराज रासो' वस्तुतः एक बहुत ही महत्वपूर्ण काव्य-ग्रंथ है । विद्वान यद्यपि उसे प्रामाणिक सिद्ध करने में सफल नहीं हो पाये हैं, तथापि उसे एक जाली ग्रंथ भी नहीं कहा जा सकता है । ऐसा कहना समाज और साहित्य दोनों के साथ अन्याय करना होगा । चंद ने पृथ्वीराज के समय में ही 'रासो' के मूल रूप प्रस्तुत किया था । परंतु बाद में प्रक्षिप्त अंश उसमें समाविष्ट होते गये ।

3.6. बोध प्रश्न

1. पृथ्वीराज रासो की कथावस्तु का विवेचन कीजिए ।
2. पृथ्वीराज रासो की वस्तुपरक विशेषताओं को समझाइए ।
3. पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर एक लेख लिखिए ।
4. पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता पर विचार कीजिए ।
5. पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक माननेवाले विभिन्न तर्क प्रस्तुत कीजिए ।
6. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता की चर्चा कीजिए ।

NOTES

NOTES

इकाई चार : पद्मावती समय का कथासार एवं काव्य-सौंदर्य

इकाई की रूपरेखा

4.0. उद्देश्य

4.1. प्रस्तावना

4.2. कथासार

4.3. पद्मावती समय का काव्य-सौंनर्द

- 4.3.1. वस्तु वर्णन
- 4.3.2. बारात वर्णन
- 4.3.3. सेना का वर्णन
- 4.3.4. युद्ध वर्णन
- 4.3.5. भावाभिव्यंजना
  - 4.3.5.1. वीर रस
  - 4.3.5.2. श्रृंगार रस
  - 4.3.5.3. अन्य रस
- 4.3.6. अलंकार योजना
- 4.3.7. भाषा

4.4. निष्कर्ष

4.5. बोध प्रश्न

4.0. उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत 'पद्मावती समय' का कथासार तथा काव्य-सौंदर्य का विवेचन किया जा रहा है, जिसके अध्ययन के उपरांत आप -

1. 'पद्मावती समय' के कथा-भाग से अवगत होंगे ;
2. 'पद्मावती समय' की काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से समीक्षा कर पायेंगे ;
3. वस्तु-वर्णन की दृष्टि से इस सर्ग पर विचार कर पायेंगे ;
4. 'पद्मावती समय' के भाव-सौंदर्य को समझ पायेंगे ;
5. इस अध्याय की साहित्यिक विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे ;
6. इस सर्ग के भावपक्ष तथा कलापक्ष का संपूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे ।

4.1. प्रस्तावना

'पद्मावती समय' में वस्तु-वर्णन अत्यंत मनोरम और रसमय है । पद्मावती के रूप-सौंदर्य का वर्णन, बारात का वर्णन, युद्ध और सेना का वर्णन भी अत्यंत सुंदर बन पड़ा है । रस-योजना तथा अलंकार-योजना की दृष्टि से भी 'पद्मावती समय' उत्कृष्ट काव्य-भाग है । इसमें प्रयुक्त भाषा भी भावानुकूल ही है । भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से यह 'समय' अतीव सफल है । 'पद्मावती समय' के भाव और शिल्प दोनों पक्ष अत्यधिक सजीव व प्रभावी हैं, जिनका विवेचन प्रस्तुत इकाई में किया जायेगा ।

4.2. कथासार

चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' नामक अध्याय में इसके अन्य अनेक अध्यायों के समान एक पूर्णतया कल्पित एवं निजन्धरी काव्य-रूढ़िकथा का ही वर्णन किया गया है । यों तो वह ऐतिहासिक-सी ही प्रतीत होती है, पर उसका मूल आधार निश्चय ही कल्पित लोक-साहित्य ही है । कवि ने

इसमें कल्पित देश समुद्रशिखर के राजा विजयपाल (कल्पित) की पुत्री राजकुमारी पद्मावती और दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान के प्रणय और विवाह का वर्णन किया है । कथा का प्रारंभ समुद्रशिखर राजा और पद्मावती के सौन्दर्य के वर्णन से होता है । कवि ने बताया है कि पूर्व दिशा में एक विशाल और दुर्गम दुर्ग पर यादववंशी राजा विजयपाल राज्य करता था । वह राजा बड़ा वीर, पराक्रमी तथा अद्वितीय सेनापति था । उसकी एक रानी पद्मसेन कुंवर थी । इसी रानी के गर्भ से एक अद्वितीय सुंदरी कन्या का जन्म हुआ जिसे पद्मावती नाम दिया गया । रति के समान रूपवती और वसंत के समान प्रफुल्ल उस कन्या के रूप की चर्चा शीघ्र ही चारों ओर फैल गई ।

एक दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ राजोद्यान में क्रीड़ा कर रही थी कि उसी समय एक तोता उसके होंठों को बिम्बाफल समझ कर उस पर झपट्टा मारा । पद्मावती ने तोते को अपने दोनों हाथों में पकड़ लिया और मणि-मण्डित स्वर्ण-पिंजड़े में बंद किया । धीरे-धीरे तोते के प्रति पद्मावती के मन में प्रेम उत्पन्न हो गया और वह उसके साथ रहकर खेलना-कूदना भी भूल गई और उसे 'राम-राम' का पाठ पढ़ाने लगी । तोता भी अत्यंत विद्वान और पण्डित था । वह राजकुमारी पद्मावती को प्रतिदिन अनेक कथाएं सुनाने लगा । इस प्रकार यह पूर्णतया लोक कथाओं पर आधारित कल्पित प्रसंग है । तोते या इसी प्रकार के पक्षियों और जानवरों की कल्पना (मानव की मर्यादा में) अन्य अनेक लोक-काव्याओं में भी मिलते हैं ।

कुछ समय पश्चात् सुंदरी पद्मावती ने तोते से पूछा 'हे शुक सच-सच बताना । तुम्हारे देश का क्या नाम है और वहां कौन राजा राज्य करता है ? इसी प्रकार का प्रश्न जायसी के 'पद्मावत' में राजा रत्नेसन की रानी नागमती भी तोते से करती है और तोता उसके सामने पद्मावती की प्रशंसा करता है । बाद में तोता राजा के सामने भी पद्मावती के रूप-यौवन की प्रशंसा करके प्रेम जगा

देता है । यहाँ तोते ने उत्तर दिया कि हिन्दुस्तान देश में दिल्ली गढ़ नामक स्थान में चौहान-वंशीय श्रेष्ठ शूरवीर और शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज राज्य करता है । उसकी आयु सोलह वर्ष है, प्रलम्ब भुजाएँ घुटनों तक लटकती हैं और पृथ्वी पर वह इन्द्र के समान बलशाली है । अपनी भुजाओं की अपार शक्ति से वह समस्त पृथ्वी का भोग करता है । उसने गोरी के सुलतान शहाबुद्दीन को तीन बार युद्ध में हराया है । उसका निशाना अचूक है और वह शब्द-वेधी बाण छोड़ता है । वीरता और साहस की प्रति-मूर्ति वह राजा रूप में मानो कामदेव का अवतार है ।

तोते के मुख से पृथ्वीराज की यशोगाथा और रूप का वर्णन सुनकर राजकुमारी पद्मावती रोमांचित हो उठी । उसका शरीर, मन और हृदय चौहान वंशीय सम्राट पृथ्वीराज के प्रेम में मग्न हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे 'पद्मावत' में तोते के मुख से पद्मावती के रूप-यौवन राजा रत्यामिका की प्रशंसा सुन करके आसक्त हो जाता है । इधर पद्मावती के माता-पिता ने कन्या को यौवनावस्था में आया देखकर उसके लिए योग्य वर ढूँढ़ना प्रारंभ कर दिया और अपने कुल पुरोहित को बुलाकर उसे आदेश दिया - 'हे प्रियवर ! जो राजा समस्त राजाओं का भी सम्राट, जनता का प्रिय, गढ़ों का स्वामी, शीलवान, कुलीन और चरित्रवान हो, उसके साथ हमारी बेटी का संबंध निश्चित कर आओ ।' विप्र उत्तर दिशा में कुमायूँ नामक दुर्ग के अधिपति कुमोदमणि नामक राजा के यहाँ पहुँचा और उसने विधिपूर्वक पद्मावती की सगाई कर दी ।

राजा कुमोदमणि ने प्रसन्नतापूर्वक सगाई स्वीकार कर ली और बारात की तैयारी करने लगा । उसके निमंत्रण पर सारे गढ़पति सपरिवार कुमायूं आ गये । दस हज़ार घुड़ सवार, तैंतीस डेरों में पड़ाव डालते हुए अगणित सैनिक और पांच सौ हाथी-इस प्रकार एक विशाल बारात लेकर कुमोदमणि समुद्रशिखर गढ़ पहुँचा । उस समय मंगलसूचक वाद्य बज रहे थे । सारे

समुद्रशिखर में उत्साह छाया हुआ था । सभी लोगों ने अपने घरों में विशाल मंडपों और बंदनवार की सजावट की थी ।

राजकुमारी पद्मावती दिल्लीश्वर सम्राट पृथ्वीराज के प्रति आसक्त हो चुकी थी । इस प्रकार बारात को आया देखकर वह घबरा उठी । उसने व्याकुल होकर तोते से कहा 'तुम शीघ्र ही दिल्ली चले जाओ और प्रतापी नरेश पृथ्वीराज को यहां बुला लाओ । तुम उससे मेरा संदेश कहना कि जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेंगे मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य को अपना पति वरण नहीं करूँगी ।' पद्मावती ने पत्र लिखकर तोते को दे दिया और उसमें यह लिखा कि, इसी वर्ष इसी माह की शुक्ल पक्ष द्वादशी को किसी अन्य राजा के साथ मेरा विवाह होने जा रहा है और यदि आप मुझे क्षत्रिय वंश की कुलीन कन्या समझते हैं तो मेरा वरण करके मेरी रक्षा कीजिए ।

पद्मावती का पत्र लेकर तोता दिल्ली पहुँचा और उसने राजकुमारी का पत्र पृथ्वीराज को सौंप दिया । पृथ्वीराज ने पत्र पढ़कर उसी समय विवाह के साज सजाकर और सारे शूरवीर सामंतों को साथ लेकर समुद्रशिखर को प्रस्थान कर दिया । कवि चन्दबरदाई को भी अपने साथ ले लिया । दिल्ली का शासन-सूत्र उसने अपने सामंत चामुण्डराव को सौंप दिया । इस प्रकार जायसी के 'पद्मावत' की तरह 'पद्मावती समय' के नायक-नायिका के मिलने के कारण यहां भी तोता ही बनता है, जो विशुद्ध निजन्धरी काव्यों की देन है ।

जिस दिन समुद्रशिखर में कुमोदमणि की बारात आई, उसी दिन पृथ्वीराज दल-बल सहित वहां पहुँच गये । इधर पद्मावती के विवाह की सूचना पाकर गजनी के सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया । दूसरी ओर समुद्रशिखर में दो-दो बारातों के पहुँचने पर चारों ओर घोर निनाद व्याप्त हो गया । कुमोदमणि का आगमन सुनकर राजकुमारी पद्मावती अत्यंत चिन्तित हो रही थी । वह बड़ी व्यग्रता से पृथ्वीराज की प्रतीक्षा

करने लगी । तभी तोते ने आकर पृथ्वीराज के आने की सूचना दी । पद्मावती प्रसन्न हो उठी । उसने सोलह श्रृंगार किये और पृथ्वीराज को लिखे गये पत्र में निर्दिष्ट समय और स्थान के अनुसार वह एक हजार नवयुवती सखियों को साथ में लेकर सोने के थाल में जगमगाता हुआ दीपक जलाकर शिव-मंदिर की ओर चली । वहाँ उसने शिव-पार्वती की पूजा की और पहले से ही वहाँ उपस्थित पृथ्वीराज की ओर मुस्करा कर देखा । मिलन-स्थल शिव-मंदिर भी निजन्धरी लोक-काव्यों की ही देन है ।

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार पृथ्वीराज ने पद्मावती का हाथ पकड़कर घोड़े की पीठ पर चढ़ा लिया और दिल्ली की ओर प्रस्थान किया । सारे नगर में खबर फैल गई कि पद्मावती किसी राजा द्वारा हरण करके ले जायी जा रही है । वह समाचार पाते ही समुद्रशिखर में युद्ध के भयानक बाजे बज उठे । आगे-आगे पृथ्वीराज पद्मावती को लिये जा रहा था, पीछे-पीछे कुमोदमणि और विजयपाल की सारी सेना उसका पीछा कर रही थीं । पृथ्वीराज ने शत्रु की सेना को अपने पीछे आया देख अपना घोड़ा मोड़ दिया और युद्ध करने लगा ।

दोनों ओर भयंकर युद्ध छिड़ गया । युद्ध भूमि में रक्त की धारा बह चली और उससे रंगकर मिट्टी लाल हो गई ।

युद्ध में विजयी होकर पृथ्वीराज दिल्ली की ओर मुड़ा । इसी समय शहाबुद्दीन गोरी के चढ़ आने की सूचना मिली । गोरी की भयंकर सेना ने आकर पृथ्वीराज को घेर लिया । युद्ध के नगाड़े बज उठे । पृथ्वीराज वीरतापूर्वक लड़ा और थोड़ी ही देर में उसने शत्रु का विनाश कर दिया । साथ ही उसने शहाबुद्दीन गोरी की गर्दन पर अपना धनुष डालकर उसे इस प्रकार पकड़ लिया जैसे बाज गोरिल्ला (एक पक्षी) को झपट कर अपने पंजों में पकड़ लेता है । इसी प्रकार शहाबुद्दीन को कैद करके पृथ्वीराज अपने साथ ले गया और पद्मावती के साथ अष्ठ भुजां देवी के मंदिर में पहुँचा । ब्राह्मणों ने मंत्रों के उच्चारण के साथ पृथ्वीराज और

पद्मावती का विवाह कर दिया । मंदिर में विवाह की यह परिकल्पना भी लोक-कथाओं की ही देन है ।

पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन से दण्ड स्वरूप आठ हजार सुन्दर घोड़े लेकर उसे विदा कर दिया और अपने दुर्ग लौट आये । योद्धा सामंत अत्यंत हर्षित हुए, स्त्रियों ने मंगल गीत गाये । पृथ्वीराज के सिर पर मुकुट पहनाया गया, मस्तक पर तिलक लगाया गया, सेवक गण चंवर डुलाने लगे ।

इस प्रकार 'पद्मावती-समय' में महाकवि चंदबरदाई ने मुख्य रूप से पृथ्वीराज-पद्मावती के विवाह तथा शहाबुद्दीन गोरी पर पृथ्वीराज की विजय का वर्णन किया है । इस वर्णन में वीर और श्रृंगार का समन्वय तो हुआ ही है । इतिहास और कल्पना को जोड़ने का साहसिक एवं सुन्दर प्रयत्न किया गया है । समूचा स्थानों और अनेक वर्णन, पात्रों के नाम भी यहाँ कल्पित ही हैं । तोते की परिकल्पना और वर्णित क्रिया-कलाप इस प्रसंग को स्वतः ही एक निजन्धरी कथा-प्रसंग प्रमाणित कर देते हैं । कल्पित होने पर भी विशुद्ध काव्यत्व और इस परिपाक की दृष्टि से पद्मावती समय का निश्चित ही अपना अलग एवं परम महत्व है ।

4.3. पद्मावती समय का काव्य-सौन्दर्य

हिन्दी के आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता महाकवि चंदबरदाई ने अपने काव्य की रचना करते समय जहाँ अनेक प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों एवं सत्यों का ध्यान रखा है, वहाँ लोक-प्रचलित अनेक निजधारी कथाओं का भी काव्यात्मकता के औचित्य की दृष्टियों में अनेकशः समावेश अपने इस काव्य में किया है । प्रस्तुत प्रकरण 'पद्मावती समय' इसी प्रकार की काव्यात्मक योजना है । कवि ने अपने इस काव्य में अद्भुत काव्य-कौशल का परिचय दिया है । वस्तु-वर्णन, भावाभिव्यंजना, अलंकार-योजना, भाषा तथा छन्द काव्य के सभी पक्षों से 'रासो' एक उत्कृष्ट रचना है । 'पद्मावती समय' रासो का एक अध्याय है

और उसमें भी हमें कवि की प्रतिभा वैसे ही उत्कृष्ट निदर्शन देखने को मिलता है जैसा कि काव्य के अन्य अनेक स्थलों में । 'पद्मावती समय' सर्ग के काव्य-कौशल पर विचार करते हुए क्रमशः वस्तु-वर्णन, भावाभिव्यंजना, अलंकार-योजना, भाषा का विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।

4.3.1. वस्तु वर्णन

'पद्मावती-समय' में रूप-सौंदर्य, बारात, सेना और युद्धों का विस्तार से वर्णन मिलता है । कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य की बड़ी सांकेतिक और अलंकारिक अभिव्यक्ति की है । निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''मनहुं कला ससि भान कला सोलह सों बन्निय ।
बाल वैस ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय ।
बिगसि कमल, म्रिग, भ्रमर, बेनु, खंजन, मृग लुट्टिय ।
हरि, कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिष अहि छट्टिय ।
छप्पति गयंद हरि हंस-गति, बिह बनाय संचै सचिय ।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम-कामिनी रचिय ।''

इन पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकार की योजना करके कवि चंदबरदाई ने पद्मावती के रूप का बड़ा सुंदर वर्णन किया है । उपमान परंपरागत हैं, परंतु चंद ने उन्हें बड़े कौशल से संजोया है । नारी के शरीरांगों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ देखते ही बनता है । विशेष रूप से उपमानों का ही कथन करके कवि ने सांकेतिक शैली का अच्छा प्रयोग किया है । रूप-वर्णन की दृष्टि से पद्मावती-समय के अंतर्गत पद्मावती के केशों, आयु, आभरणों आदि का निम्नलिखित चित्र भी द्रष्टव्य हैं -

''कुट्टिल केस सुदेस, पौहप रचयित पिक्क सद ।
कमल गंध वय संध, हंस-गति चलत मंद-मंद ।।
सेते वस्त्र सौहै सरीर नष स्वाति-बुंद जस ।
भ्रमर भवहिं भुल्लहिं, सुभाव मकरंद बास रस ।।''

पुष्प-सज्जित केश-राशि और शरीर की गंध, गति तथा वस्त्रों का वर्णन यहाँ बड़ा रमणीय है । वयःसंधि की अवस्था से पद्मावती की मंद-मंद गति अत्यंत स्वाभाविक है । फिर पद्मावती के यौवन-रूपी मकरंद की गंध और रस की लालसा से भ्रमरों का पद्मावती के चारों ओर घूमने की कल्पना कवि प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत करती है । कवि जायसी ने भी 'पद्मावत' में नायिका पद्मावती का चित्रण इसी प्रकार किया है । वहाँ भी 'लुब्ध गन्धभ्रमर' पद्मावती के पीछे खिंचे आते हैं ।

इस प्रकार 'पद्मावती-समय' में नारी के रूप-सौन्दर्य की अनेक मनमोहक झांकियां मिलती हैं ।

4.3.2. बारात वर्णन

पद्मावती की बारात का भी रमणीय और चित्ताकर्षक वर्णन कवि चंद ने किया है । राज-परिवार के उपयुक्त सेना, गज-पंक्ति, अश्वों और वाद्यों का निम्नलिखित वर्णन देखिए -

''चले दस सहस्सं असवार जानं
पूरियं पैदलं तैंतीस थानं ।
मत्त मद गलित से पंच दंती ।
मनो सांम पाहार बुगपंत पंती ।।
चले अग्गि तेजी जु तत्ते तुषारं ।
चौपटं चौरासी जु साकत्ति भारं ।।
कंठ, नगं, नूपं अनोपं सुलालं ।
रंग पंच रंग ढलकंत ढालं ।।
पंच सुर साबद्द बाजित्र बाजं ।
सहस सहनाय म्रिग मोहि राजं ।।
समुद्र सिर सिषर उच्छाह छाहं ।
रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ।।''

यहाँ कवि ने बारात का जो वर्णन किया है, उसमें बारात में सम्मिलित समस्त पक्षों को समुचित स्थान मिला है । ऊपर की

प्रारंभिक चार पंक्तियों में हाथियों का वर्णन बड़ा मूर्त्त बन पड़ा है । विशाल हाथी, जिनके गंडस्थल से निरंतर मद चू रहा था और जिनके काले शरीरों से बाहर निकले श्वेत दाँत ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे काले पहाड़ों पर श्वेत बगुलों की पंक्तियाँ हों । यह चित्र यहाँ एक संश्लिष्ट बिम्ब की सृष्टि करता है । अंतिम पंक्तियों में वाद्यों का वर्णन भी अपूर्व सुंदर है - ऐसे वाद्य जिनका स्वर हिरणों को भी सम्मोहित करने वाला था । बारात के अवसर के अनुकूल उत्साह और प्रसन्नता - 'उत्साह छाह' - को भी कवि नहीं भूला है । इस प्रकार चन्दबरदाई ने 'पद्मावती-समय' में मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है ।

4.3.3. सेना का वर्णन

'पद्मावती-समय' में सेना का वर्णन वीर भावों को उद्दीप्त करने वाला है और कवि की वीर रस-प्रवणता का परिचायक है । शहाबुद्दीन गोरी की सेना का निम्नलिखित वर्णन देखिए -

''क्रोध जोध जोधा अनंत करिय पंती अनि-गज्जिय ।
बांन नालि हथनालि, तुपक, तीरह, सब रज्जिय ।।
पब्बैपहार मनौ सारु के, भिरि भुजान गजनेस बल ।
आए हकारि हकारि भुरि, षुरासान सुलतान दल ।।''

इन पंक्तियों में क्रोधवंत योद्धाओं के समूह, चिंघाड़ते हुए पंक्तिबद्ध हाथी, धनुष, बाण, तोप, तमंचों से सुसज्जित सैनिक, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो लोहे के पहाड़ टूट कर गिर पड़ रहे हों । इस प्रकार की सेना वीरोचित भावों की व्यंजना में सहायक सिद्ध होती है । कवि ने सेना के अंतर्गत अनेक प्रकार के सैनिक और योद्धाओं का पृथक्-पृथक् उल्लेख और उनका सविशेषण वर्णन भी किया है । कुछ पंक्तियां देखिए -

''षुरासान सुलतान कंधार मीरं ।
बलक सो बलं तेग अच्चूक तोरं ।।
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी ।
ठटी, ठट्ट बतलोच ढालं निसानी ।

मंजारी चली मुष्ष जंबक्क लारी ।
हजारी हजारी इकै जोध भारी ।''

शहाबुद्दीन की सेना के खुरासानी, कंधान्री, बलखी (जिनकी तलवार बड़ी तेजी से चलती थीं तथा जिनके तीरों के निशान अचूक थे), तुर्की, फिरंगी, हलबी-सैनिकों के इन भेदों के साथ-साथ कवि ने शरीर-रचना के भेद की दृष्टि से-बिल्ली की-सी क्रूर आँखों वाले, गीदड एवं लोमड़ी जैसे लम्बे पैने मुखों वाले-इन भेदों का उल्लेख भी किया है । सेना के अश्वों का वर्णन भी देखिए -

''जहां बाग बाघ मरूरी रिछोरी ।
धर्म सार समूह अरु चौर झौरी ।।
एराकी, अरब्बी, पटी, तेज, ताजी ।
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ।।''

अर्थात् सैनिकों के घोड़ों की लगाम बल देकर बाँधी गयी थी, मोतियों की मालाएं घोड़ों के गले में पड़ी थीं । उनके ऊपर लौह-निर्मित चंवर और झालरें शोभा पा रही थीं । उस सेना में इराकी, अरबी, पटी तथा तीव्रगति से दौड़ने वाले ताजी, तुर्की, महाबानी, कम्मानी और बाजी आदि अनेक नस्लों के घोड़े थे ।

इस प्रकार चन्दकवि ने 'पद्मावती-समय' में सेना का बड़ा वैविध्यपूर्ण और वीरभावोद्दीपक वर्णन किया है ।

4.3.4. युद्ध वर्णन

'पद्मावती-समय' में शहाबुद्दीन गोरी और पृथ्वीराज के युद्ध का वीररसपूर्ण वर्णन हुआ है । 'बज्जिय घोर निसानं' आदि पद्य में युद्ध की क्रियाओं का वर्णन बड़ा सूक्ष्म है । कवि ने युद्ध के प्रसंगों में बड़े भयानक और बीभत्स दृश्यों का चित्र भी प्रस्तुत किया है । कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं -

''न को हार मह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर ।
घर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ।।
कहौं कमष कहौं मथ्थ कहौं कर चर व अंतरुरि ।

कहौं कंष बहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर ।।
कहौं देत मेत हम षुर षुपरि, कुंभ भसुइह रुंड सब ।
हिंदवान रांन भय भांन मुष गहउ तेग चहुआन जब ।।''

इस कवित्त की अंतिम चार पंक्तियों में चित्रित दृश्य बड़ा जुगुप्साजनक है । सभी भट भीषण युद्धकर रहे हैं और मर-कट रहे हैं । कहीं शूरवीर योद्धाओं के कबंध पड़े हैं, कहीं उनके सिर, हाथ और पाँव कटे पड़े हैं, कहीं उनकी अंतड़ियां बिखरी पड़ी हैं, तलवार से कटकर किसी का कंधा अलग हो रहा है । किसी के सिर परस्पर टकरा रहे हैं, किसी की छाती तलवार के आघात से फट गयी है । कहीं मस्त हाथियों के दाँत इधर-उधर बिखर रहे हैं, कहीं घोड़ों के खुर और खोपड़ियाँ कटी पड़ी हैं । युद्ध का यह वर्णन निस्संदिग्ध रूप से बीभत्स है, अतैव स्वाभाविक है ।

कवि चंद ने युद्ध के वर्णन में अपनी कल्पना का कौशल भी प्रदर्शित किया है । महाराज पृथ्वीराज शत्रुओं की सेना पर इस प्रकार टूटते हैं जैसे हाथियों के समूह पर सिंह आक्रमण करे -

''गही तेग चहुआंन हिंदवांन सेनं ।
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ।।''

युद्ध के तीव्र उत्कर्ष का वर्णन कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है -

''करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे ।
मंद तजियं लाज ऊमग्ग मग्गे ।।
दौरि गज अंध चहुआंन केरो ।
घेरियं गिरछ चिहौ चक्क फेरो ।।''

इन पंक्तियों में युद्ध की भीषणता का अपने चरम रूप में चित्रण किया गया है । सूंड कट जाने के कारण हाथी चिंघाड़ मार कर भागने लगते हैं । अपने मद की मत्तता भी तब उन्हें याद नहीं रहती । जिधर रास्ता मिलता है, वे उधर ही भागते हैं । हाथियों के चिंघाड़ मारकर भागने का दृश्य युद्ध भूमि में बड़ी खलबली

मचा देता है । चंद कवि ने 'पद्मावती-समय' में युद्धों के ऐसे ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं । इसी कारण कवि चंद की रचना 'पृथ्वीराज रासो' का युद्ध एवं युद्ध सामग्रियों का सजीव वर्णन एक प्रमुख विशेषता माना जाता है । इस प्रकार के वर्णन वास्तव में अत्यधिक स्वाभाविक हैं भी ।

4.3.5. भावाभिव्यंजना

'पद्मावती-समय' में मुख्यतः वीर, श्रृंगार रसों की व्यंजना मिलती है और गौण रूप से रौद्र, बीभत्स और भयानक रसों की योजना भी हुई है । ऊपर युद्ध-वर्णन के प्रसंग में वीर और बीभत्स रसानुकूल वर्णनों के उदाहरण दिये गये हैं । 'पद्मावती-समय' में व्यक्त इन विभिन्न भावों की व्यंजना के पृथक्-पृथक् उदाहरण भी दिये जा रहे हैं ।

4.3.5.1. वीर रस

सेना-सज्जा, रण-प्रयाण, व्यूह-रचना, युद्ध, मारकाट, भगदड़ तथा रण-क्षेत्र के अनुभूतिपरक वर्णनों में वीर रस की अभिव्यंजना मिलती है । वीर रस के पूर्ण परिपाक की दृष्टि से निम्नलिखित छन्द विशेष द्रष्टव्य है -

''बज्जिय घोर निसांन, रांन चहुंआन चहूं दिसि ।
सकल सूर सामंत, समरि बल जंत्र मंत्र तस ।।
उट्ठि राज प्रथिराज, बाग मानो लग नीर नट ।
कढत तेग सन वेग लगत मनौं बीज झट्ट घट ।।
थकि रहे सूर कौतिग गिगन, गगन मगन भइ स्रोम घर ।
हर हरषि वीर जग्गे हुलसि, हुरष रंगि नव रत्त वर ।।''

4.3.5.2. श्रृंगार रस

श्रृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का चित्रण कवि चंद ने 'पद्मावती-समय' में किया है, यद्यपि वह है संक्षिप्त ही । संयोग श्रृंगार-वर्णन आता है ; पूर्वराग का वर्णन भी मिलता है ।

निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका उदहारण हैं -

''सुनत स्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग ।
तन मन चित चहुआंन पर, वस्यौ सुस्तह रंग ।।''

श्रृंगार के विप्रलम्भ पक्ष के अंतर्गत 'पद्मावती-समय' की निम्नलिखित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं -

''बिलषि अवास कूंवरि बदन मनौराहु छाया सुरत ।
झंपति गबष्षि पल-पल पुलकि विपत पथ दिल्ली
निपति ।।''

प्रवासजन्य या मृत्युजन्य वियोग श्रृंगार का वर्णन निश्चय ही इस प्रसंग में नहीं मिलता । वह मिल भी नहीं सकता क्योंकि यहाँ ऐसी स्थितियाँ हैं भी तो नहीं ।

4.3.5.3. अन्य रस

गौण रूप से प्राप्त रौद्र, बीभत्स और भयानक रसों के उदाहरण इस प्रकार हैं -

रौद्र - **''बाजी सुबंव हय गय पलांन ।**
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसांन ।।
तुम्ह लेहु-लेहु मुष जंपि जोध ।
हन्नाह सूर सब पहिर क्रोध ।

बीभत्स - **''कहौं कमध कहौं मथ्थ, कहौं कर चरण अंतगरि ।**
कहौं कंध बहि तेग, कहौं सिर जुट्टि, फुट्टि उर ।।''

भयानक - **''उलटि जु राज प्रथिराज बाग ।**
थाकि सूर गगन धर धसत माग ।।
सामंत सर सब काल रूप ।
गहि लोह-छोह बाहै सुभूप ।।''

इसी प्रकार 'पद्मावती-समय' में अदभुत और हास्य आदि रसों के उदाहरण भी मिल जाते हैं । किंतु शांत रस का समावेश नहीं हो पाया है ।

4.3.6. अलंकार योजना

'पद्मावती-समय' में यथास्थान अलंकारों का प्रयोग भी कवि चंद ने किया है । अलंकारों का यह प्रयोग सायास नहीं, बल्कि स्वाभाविक रूप से हुआ है । वीर और श्रृंगार दोनों के वर्णनों में आलंकारिकता दर्शनीय है । यहाँ कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण दिये जा रहे हैं -

अनुप्रास - **'इसम हयग्गह देस अति ।'**
'षर भर रज रष्षह ।'

उपमा - **'रति बसंत परमाँन ।'**
'नष स्वांति बुंद जस ।'

रूपक - **'मंडल मयंक वर नारि सब ।'**

उत्प्रेक्षा - **'मनहुं कला ससि भाँन कला सोलह सो बन्निय ।**
'मनहुं लता कंचन लहरि, मत्त वीर गजराज गट्टि ।'

अतिशयोक्ति - **'इक नायक कर धरी**
पिनाक धर भर रज रष्षह ।'

यमक - **'भंडार लछिय अगनित पदम,**
सो पदम सेन कूंवर सुघर ।'

भ्रांतिमान - **'अरुन अधर तिय सषर,**
बिंबफल जानि कीर छवि ।'

द्रष्टान्त - **''ज्यौं रुकमनि कन्हर वरिय, ज्यौं वर संभर कांत ।**
सिव मंडप पच्छिम दिसा, पूजि समय सप्रान्त ।।''

मुख्यतः कवि ने 'पद्मावती-समय' में इन्हीं अलंकारों का सजीव प्रयोग किया है । इनके अतिरिक्त अन्य कई अलंकारों के उत्तम उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं ।

4.3.7. भाषा

रासो की भाषा भावानुकूल रूप धारण करती है । 'पद्मावती-समय' में भी रासो की भाषा का यह गुण मिलता है । जहाँ कवि प्रेम जैसे कोमल भावों की व्यंजना करता है, वहाँ भाषा माधुर्य गुणोपेत है, परंतु युद्ध के वर्णनों में भाषा में ओज गुण की प्रधानता है । युद्ध के वर्णनों में भाषा में पुरुष व्यंजनों का प्रयोग भी अधिक किया गया है । 'पद्मावती-समय' में माधुर्य गुणोपेत भाषा का रूप निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

'सेत वस्त्र सोहै सरीर, नष स्वाति बुंद जस ।
भ्रमर भवहि भल्लहिं सुभाव, मकरंद बास रस ।।''

भाषा की अलंकरण-प्रवृत्ति भी यहां पर स्पष्ट देखी-परखी जा सकती है ।

ओजगुणोपेत और पुरुष-प्रधान भाषा प्रयोग वीर रस के सभी प्रसंगों में मिलता है । निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैं -

''कटे रंड सुंड करी कुंभ फारे ।
वर सूर सामंत हूक गर्ण भारे ।।''

'पद्मावती-समय' में कवि की भाषा समृद्ध कल्पना और सशक्त अभिव्यक्ति से युक्त है । भावाभिव्यंजना और वस्तु-वर्णन के प्रसंगों में कल्पना और अभिव्यक्ति का निदर्शन पहले ही मिल चुका है । वास्तव में चंद कवि विषयानुकूल और भावानुकूल भाषा के सफल प्रयोक्ता हैं । 'कुट्टिल केस सुदेस पौहप रचियत पिक्क सद' जैसी पंक्तियां इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं ।

4.4. निष्कर्ष

इस प्रसंग का व्यक्ति पक्ष कवि की सप्राणता का भी द्योतक है । वर्ण्य विषय को कवि ने जिस ढंग से संजा-संवार कर प्रस्तुत

किया है, वह वास्तव में कवि चंद की कुशलता का परिचायक है 1 काव्य-रूढ़ियों का सुनियोजित प्रयोग और उसमें ऐतिहासिक तत्वों का समावेश भी विशेष दर्शनीय है । अपनी कुशलता से ही कवि ने निजधारी कथाओं पर आधारित इस समूचे प्रसंग को एक प्रकार से ऐतिहासिक बना दिया है । अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि 'पद्मावती समय' के भाव और शिल्प या कला दोनों पक्ष अत्यधिक सजीव, संप्राण एवं प्रभावी हैं । यह प्रसंग कवि बरदाई को निश्चय ही अपने युग का जीवंत महाकवि प्रमाणित कर देता है । कोमल और कठोर की समन्वित योजना निश्चय ही इस जैसे अन्य किसी भी प्रसंग में नहीं मिलती है ।

4.5. बोध प्रश्न

1. पद्मावती समय की कथावस्तु को प्रस्तुत कीजिए ।
2. भाव-सौदर्य की दृष्टि से 'पद्मावती समय' की समीक्षा कीजिए ।
3. 'पद्मावती समय' के काव्य-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए ।
4. 'पद्मावती समय' के काव्य-सौष्ठव का विवेचन कीजिए ।
5. 'पद्मावती समय' के विभिन्न वस्तु-वर्णनों पर एक लेख लिखिए ।
6. 'पद्मावती समय' के काव्य-कौशल पर विचार कीजिए ।

NOTES

Karnataka State Open University

Mukthagangothri, Mysore - 570 006

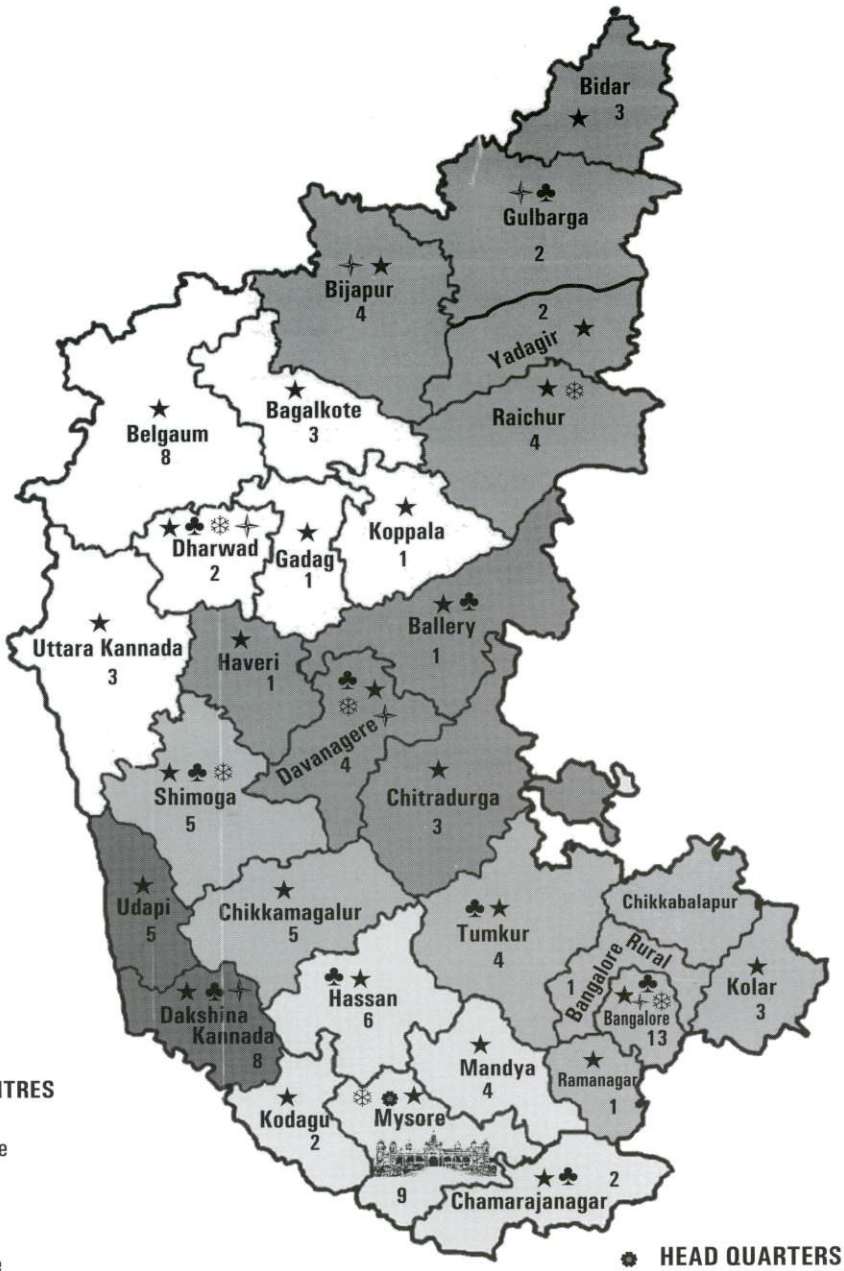

♣ **REGIONAL CENTRES**

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

❁ **HEAD QUARTERS**
★ **Total Study Centres : 111**
♣ **Regional Centres : 10**
❄ **B.Ed Study Centres : 10**
✦ **M.Ed Study Centres : 08**

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕ.ರಾ.ಮು.ವಿ./ಅ.ಸಾ.ವಿ./4-061/2013-2014 ದಿನಾಂಕ : 23.12.2013
ಒಳಪುಟ :60 GSM ಮ್ಯಾಪ್ಲಿತೊ ಕಾಗದ ಮತ್ತು ರಕ್ಷಾಪುಟ :170 GSM ಮ್ಯಾಟ್ ಆರ್ಟ್ ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು :ವಿನಾಯಕ ಆಫ್‌ಸೆಟ್ ಪ್ರಿಂಟರ್ಸ್, ಬೆಂಗಳೂರು–560 070 ಪ್ರತಿಗಳು :1600

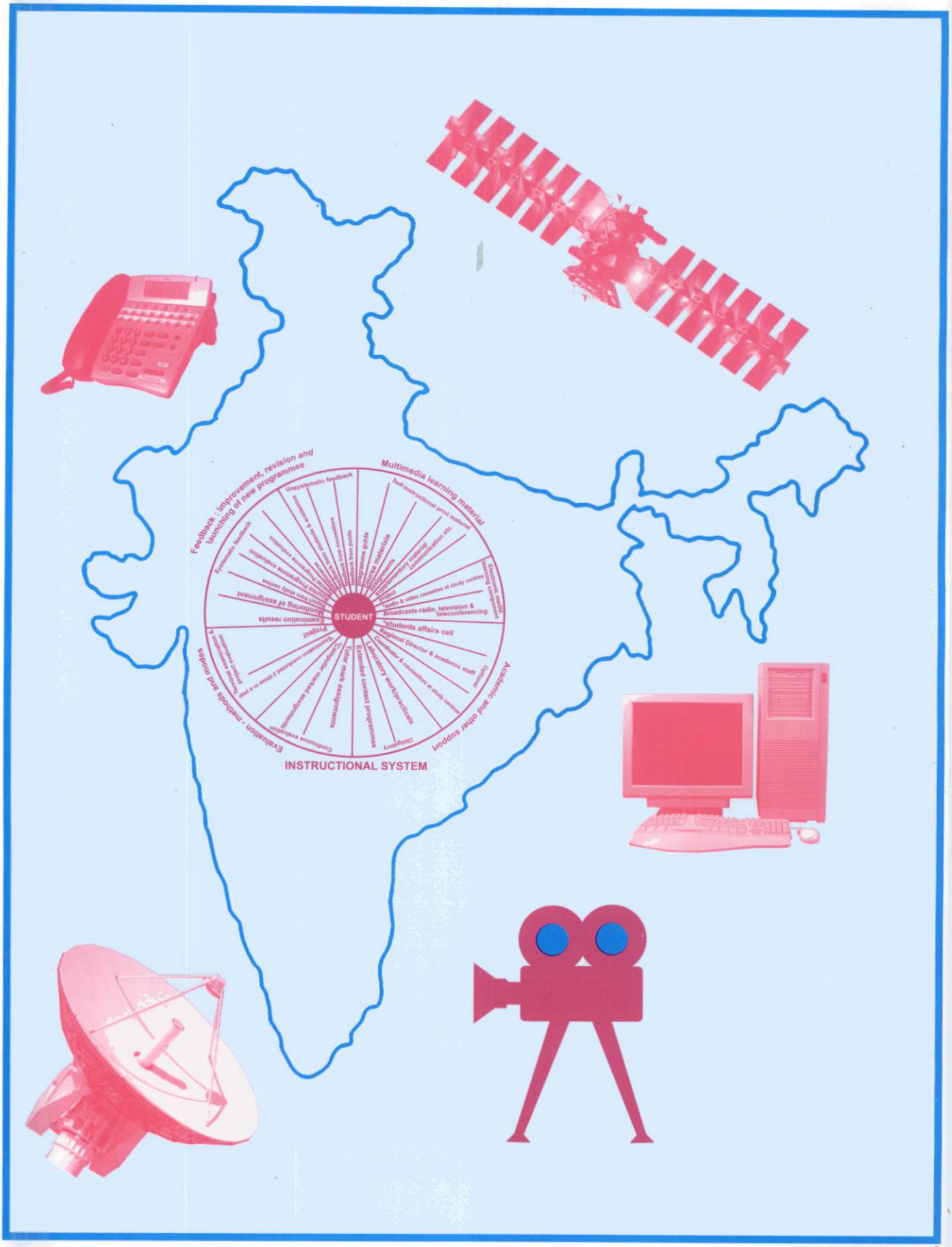

VOP-1600-104-1